गरुड़ध्वज

लेखक :

लक्ष्मीनारायण मिश्र

भूमिका

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी के सफल और ख्याति प्राप्त नाटककार हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मिश्र जी वर्तमान समय के हमारे सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके नाटक उच्च कोटि के हैं और पढ़ने में भी उनसे उतना ही रस और आनन्द मिलता है जितना उनका अभिनय देखने में। उनके 'सिंदूर की होली', 'राजयोग', 'मुक्ति का रहस्य', 'आधीरात', 'संन्यासी' आदि नाटक हिंदी के स्थायी साहित्य के अंग बन गए हैं।

मिश्रजी के नाटक अनेक प्रकार के हैं। वे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक नाटक लिखने में उतने ही सिद्धहस्त हैं जितने ऐतिहासिक नाटक लिखने में। उनके नाटकों में प्राचीन नाटकों का रस और आधुनिक नाटकों की बुद्धिवादिता का रोचक और सफल समन्वय है। वे एक साथ ही नवीन और प्राचीन हैं।

'गरुडध्वज' ऐतिहासिक नाटक है और वह रवीन्द्रनाथ और प्रसाद' की परम्परा में है। इसमें मिश्रजी के व्यक्तित्व की छाप है। इसकी कथा ईसा के पूर्व पहिली-दूसरी शताब्दी की है। जैसा कि ऐतिहासिक नाटकों और उपन्यासों का क्रम है, कथा का आधार मात्र ऐतिहासिक है और उसका शरीर लेखक की प्रतिभाशाली कल्पना और चिंतन से तैयार हुआ है। तत्कालीन इतिहास अभी स्पष्ट नहीं है उसमें खोज और अन्वेषण की बहुत आवश्यकता है और जब तक उस युग में लोगों की रुचि नहीं होती और उसके महत्व का मूल्यांकन नहीं किया जाता तब तक कदाचित उस युग की ओर लोगों का विशेष ध्यान भी नहीं जायगा। आशा है, 'गरुड़ध्वज' जनता का ध्यान उस युग की ओर आकर्षित करने में सफल होगा।

ग्वालियर राज्य में भिलसा एक छोटा-सा नगर है। इसका प्राचीन नाम 'बिदिशा' है। इसके पश्चिमी सिवाने पर उदयगिरि की प्रसिद्ध

गुफायें हैं और दक्षिणी भाग में ग्रीक-वैष्णव हेलियोडोरस का बनवाया हुआ ईसा के पूर्व की प्रथम या द्वितीय शताब्दी का गरुडध्वज है। गरुडध्वज वह स्तम्भ है जिसके शिखर पर भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ की मूर्ति बनी होती है, यह विष्णु मंदिर के प्रांगण में स्थापित किया जाता है, गरुड का मुख भगवान् की मूर्ति की ओर रहता है। ऐसा मालूम होता है कि जहाँ आज यह गरुडध्वज खड़ा है वहाँ प्राचीन समय में विष्णु भगवान् का विशाल मंदिर था और ग्रीक वैष्णव हेलियोडोरस ने वैष्णव होने के कारण वहाँ अपनी भक्ति के चिन्ह स्वरूप उसकी स्थापना की थी।

उन दिनों वैष्णव धर्म को भागवत धर्म के नाम से पुकारा जाता था। वैष्णव धर्म जो भक्त प्रधान धर्म है, सदैव से वर्ण भेद के ऊपर रहा है। आगे चल कर रसखान, ताज, जमाल आदि मुसलमान भक्त भी उसमें सम्मिलित हुए हैं, किंतु उनका वैष्णव होना कोई नवीन बात नहीं; क्योंकि ईसा के जन्म से सौ-दो-सौ वर्ष पहिले यूनानी राजदूत हेलियोडोरस भी भागवत धर्म में दीक्षित हो चुका था।

'गरुडध्वज' में जो वातावरण है उसको समझने के लिए थोड़े बहुत ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है। विद्वान लेखक ने अपनी भूमिका में उसका दिग्दर्शन करा दिया है। हमें अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक हम अपने इतिहास को न जानें। हमारा इतिहास इतना गौरवशाली है कि उसके जानने से हमारे राष्ट्र में आत्मविश्वास और आत्माभिमान का संचार होगा और बिना इन गुणों के कोई भी राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता।

हिंदी साहित्य को इतना सुंदर नाटक देने के लिए मैं पं० लक्ष्मी-नारायण मिश्र का अभिनन्दन करता हूँ!

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

दो शब्द

कालिदास की रचनाओं में, 'मालविकाग्निमित्र' विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इसकी सारी घटनायें, इसके सभी चरित्र, शुङ्गयुग के इतिहास में मिल जाते हैं। इस नाटक के लिखने में कालिदास ने कल्पना से बहुत कम काम लिया है। प्रेम और शृंगार की योजना और इस तरह के कुछ मोहक चित्रों को छोड़ कर नाटक की प्रधान कथावस्तु तत्कालीन इतिहास की संगति में ऐसी ठीक बैठ जाती है कि कालिदास का सम्बन्ध उस युग के साथ निर्विवाद-सा लगता है। विदर्भ के युद्ध का वर्णन, यज्ञसेन की पराजय और वरदा के तट तक की भूमि पर माधवसेन का अधिकार, सिन्धु के तट पर कुमार वसुमित्र के साथ यवनों का संघर्ष और वसुमित्र-की वीरता से यवनों की पराजय एक के बाद दूसरी इतिहास की घटनायें हैं। चरितों में भी धारणी, इरावती, मालविका, वीरसेन, वाहतव, सुमति, यज्ञसेन, माधवसेन, अग्निमित्र के यशस्वी पिता अश्वमेध-पराक्रम पुष्यमित्र और यवनजयी पुत्र कुमार वसुमित्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।

यह ऐतिहासिक सामग्री कालिदास को कहाँ से मिली थी? किसी ग्रन्थ विशेष में ठीक इस क्रम के साथ तो यह सामग्री उपलब्ध नहीं है। शुंग सेनापतियों के काल की पूरी जानकारी कालिदास को थी—यहाँ तक कि वे साधारण बातें और परिस्थितियाँ, जो परवर्ती काल में अवश्य ही भूल जातीं और जिनका उपयोग कालिदास ने इस रचना में किया है, सिद्ध करती हैं कि कालिदास शुंगयुग में ही हुए थे।

शुंगों के प्रति कालिदास की निष्ठा जो इस नाटक में मिलती है उस पर भी विचार करना होगा। पुष्यमित्र ने मौर्यशासक बृहद्रथ का बध सारी सेना और मन्त्रिपरिषद् के सामने किया था और यह बात किसी से छिपी भी नहीं थी। उस स्थिति में तो कालिदास यदि इस कर्म को जघन्य समझते तो पुष्यमित्र और उसके वंशजों के आदर की भावनायें इस नाटक में नहीं मिलतीं। साधारण अवस्था में वे इनकी निन्दा ही करते। जैसा कि किसी भी इस कोटि के मनस्वी से सम्भव है। किन्तु यह न होकर जब हम यह देखते हैं कि कालिदास ने पुष्यमित्र, अग्निमित्र और वसुमित्र को आदर्श रक्षक और वीर के रूप में चित्रित किया है— जो प्रजा रञ्जन और शास्त्रीय विधि विधान के प्रवर्तक हैं, वैदिक संस्कार और जातीय परम्परा में जिनकी अटूट श्रद्धा है। परीक्षित के बाद अश्वमेध का पुनराहरण कर जिन्होंने जातीय गौरव और श्री को फिर प्रतिष्ठित किया है, तो हमारे सामने अशोक के बाद की वह मौर्य निष्क्रियता और दुर्बलता आ जाती है जिसके कारण जातीय जीवन नष्ट हो चुका था। विदेशी आक्रमण, आन्तरिक अशान्ति और देश की सनातन प्रथाओं का निरादर पुष्यमित्र और उसके वंशजों के लिये असह्य था। कालिदास के ग्रंथों में भी यही असह्य है। आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ ही साथ भौतिक उत्कर्ष के चित्र जो कालिदास खींचते हैं वे सन्देह नहीं शुंग युग की विभूति हैं, जिसमें बौद्ध जीवन-विधि का ह्रास और शास्त्रीय वैदिक जीवन-विधि का उत्कर्ष है।

बौद्धों ने भौतिक साधनों का तिरस्कार किया था और उसका परिणाम हुआ जातीय शक्ति का विनाश और प्रायः सारे पंजाब में यवनों का प्रवेश। विशेषतः यवन दत्तमित्र के आक्रमण ने साकेत, मध्यमिका और गोमठ की धरती को आक्रान्त कर दिया शुंगों ने अपनी शक्ति से और कलिंग के मेघवाहन खारवलि के सहयोग में भी यवनों को पराजित किया और केवल सेनापति के पद से स्वदेश रक्षा, यवनों को पराजित कर

सांस्कृतिक एकाधिपत्य, प्रजा रञ्जन, व्यवस्था, आदर्श न्याय, धर्म, कला और साहित्य का प्रसार किया। शुंगकालीन आदर्शों पर ही कालिदास की महानता टिकी है। सम्भव है इतिहासकार किसी दिन इस तथ्य को स्वीकार करें।

मेघदूत में उस समय की महानगरियों के वर्णन के प्रसंग में कालिदास ने विदिशा के साथ राजधानी शब्द का प्रयोग किया है।

भारतीय इतिहास में विदिशा का गौरव केवल शुंगों के काल में ही देखा जा सकता है। विदिशा के समीप ही इनका मूल स्थान था और यह स्वाभाविक है कि इनके उत्कर्ष के साथ ही साथ विदिशा का भी उत्कर्ष होता। पाटलीपुत्र, साकेत और अवन्ती ऐसे नगरों के रहते हुए भी तक्षशिला के यवन राजा अन्तिअलिखित ने अपने राजदूत हेलिओडोरस को भेजकर जो विदिशा में गरुडस्तम्भ का निर्माण कराया उसका भी तो कोई बुद्धि संगत कारण खोजना ही पड़ेगा, और उसका कारण सिवा इसके कि शुंग सेनापतियों की दृष्टि में विदिशा का गौरव और सभी नगरों से अधिक था और कुछ हो ही नहीं सकता। इस स्तम्भ के लेख में यवन-दूत ने शुंग-भागभद्र को त्राता कहा है। कालिदास भी शुंगों को त्राता ही समझते हैं। तो फिर राजधानी कहते किसे हैं? शुंग साम्राज्य की राजनीति का केन्द्र विदिशा थी और कालिदास ने इसी अर्थ में इसे राज-धानी कहा है। विदिशा की इस प्रतिष्ठा के युग में ही कालिदास ने जन्म लिया था। इसी विचार से मेरे इस नाटक में वे पात्र भी बन सके हैं।

हमारी परम्परा और अनुश्रुतियों के अनुसार कालिदास शकारि विक्रमादित्य के अंतरंग सखा और राजकवि थे। यह विश्वास जो लोक जीवन में सदैव चलता रहा है, एकदम निराधार नहीं हो सकता। जातीय संस्कृति में इन अनुश्रुतियों की भी महिमा है। मेरे इस नाटक 'गरुडध्वज' में कालिदास की किशोरावस्था तो शुंग सेनापति विक्रममित्र के लालन-पालन में बीती है। 'मेघदूत' और 'कुमारसम्भव' के नौ सर्ग विदिशा में

लिखे गये हैं—किन्तु युवावस्था में वे अवन्ती के उद्धार के अवसर पर सेनापति विक्रममित्र के आदेश से मालव कुमार विषमशील (जिनका दूसरा नाम संस्कार उसी अवसर पर महाकाल के मन्दिर में विक्रमादित्य होता है) के राजकवि बनाये जाते हैं। कालिदास का सम्बन्ध शुंग सेनापति विक्रममित्र और शकारि विक्रमादित्य दोनों के साथ है इसी आधार पर मैं इस नाटक के लिखने में सफल हो सका हूँ। मेरी कल्पना का यह आग्रह सम्भव है किसी दिन इतिहास के विद्वानों को भी स्वीकार हो। हमारी संस्कृति से यदि कालिदास और विक्रमादित्य निकाल दिये जाय तो निस्सन्देह वह श्री और शक्ति से हीन हो जायेगी। इस नाटक की मूल प्रेरणा वही श्री और शक्ति है और अब अन्त में:—

प्रवर्तताम् प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नील लोहितः
पुनर्भवम् परिगत शक्तिरात्मभूः॥

महाकवि कालिदास की इस कामना में अपना कथन समाप्त करता हूँ।

गंगा दशमी
सम्वत् २००२

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

गरुडध्वज

पहला अङ्क

[बेतवा के निकट सेनापति अग्निमित्र का विशाल प्रासाद। प्रासाद की दीवारें ठोस काले और श्वेत पत्थर की बनी हैं। चारों कोनों और बीच में मन्दिर की तरह शिखर आकाश चीरकर बहुत ऊँचे जा लगे हैं। प्रातःकालीन सूर्य की किरणें जिन पर पड़कर एक ही साथ अनेक बिजलियाँ चमका रही हैं। बीचवाले शिखर पर गरुडध्वज गम्भीर मुद्रा में धीमी वायु के सहारे दायें बायें हो रहा है। प्रासाद का कुछ अधिक भाग दाहिनी ओर छोड़कर बीच में सिंहद्वार है जिसकी रक्षा के लिये सशस्त्र प्रहरी पाँच एक ओर और पाँच दूसरी ओर; शिरस्त्राण और कवचधारी, सीधी पाँत में, दायें हाथ के तीक्ष्ण लम्बे भाले की टेक देकर खड़े हैं। इस सिंहद्वार के सामने प्रासाद की पूरी लम्बाई भर पत्थर का चौतरा दूर तक आगे को निकल गया है। चौतरे के ठीक नीचे बीच से चौड़ा राजपथ प्राचीर के सिंहद्वार तक जा लगा है जिसके दोनों ओर अशोक के वृक्ष कहीं लाल और कहीं श्वेत फूलों से झुके जा रहे हैं। प्रासाद के चतुर्दिक घूमती हुई यह प्राचीर-मेखला बड़े बड़े पत्थर खण्ड जोड़कर बनी है, जिसके किनारे और कहीं-कहीं ऊपर, सैनिकों के स्थान बने हैं। प्राचीर के ठीक नीचे बेतवा दक्षिण-पूर्व होती हुई निकल गई है। महानगरी विदिशा इस प्रासाद के ठीक पश्चिम है और उधर से प्रवेश का मार्ग इस राजमार्ग के विपरीत ठीक दूसरी ओर है। प्राचीर के भीतर किनारे-किनारे ऊँचे-ऊँचे विभिन्न छायादार

पेड़ हैं। भीतर राजपथ और प्राचीर के बीच में भी जहाँ-तहाँ पेड़ों के झुरमुट हैं जिनके निकट पालतू हिरण, मोर और गोवत्स घूम रहे हैं। प्रासाद के उत्तर पहाड़ियाँ निकट ही दिखाई पड़ रही हैं। प्राचीर के किनारे के उत्तर पूर्व, ईशान भाग में श्वेत स्फटिक का विशाल मन्दिर है जिसके भीतर से यज्ञधूम निकलकर सब ओर फैल रहा है। मन्दिर में एक ही साथ शङ्ख और घण्ट बजने की ध्वनि होती है। सिंहद्वार के प्रहरी सचेत होकर सीधे तन कर खड़े होते हैं और कभी सिर झुकाकर उसी ओर देख लेते हैं।]

पहला प्रहरी

तो तुम्हें पता कैसे चला ?

दूसरा

अब तुम कहो मित्र...नागसेन ! तुमसे इसने नहीं कहा ? और फिर हल्दी का रंग इसके शरीर पर अभी उसी तरह... चढ़ा है (बायाँ हाथ उसके मुख की ओर बढ़ाता है जिसमें उसकी दो ऊँगलियाँ उसकी नाक पर जा लगती हैं।)

पहला

(सिर पीछे की ओर खींचते हुए) अरे ! यह नहीं···मैं तो ···तुमने जो कहा कि आज···सेनापति प्रासाद में आयेंगे। आज तो पूर्णिमा नहीं है।

नागसेन

किस संकोच में पड़ रहे हो लोमश ! क्या आज और क्या कल ? बीस वर्ष किसी तरह बीत जायँ फिर इक्कीसवें में तो हल्दी लगती ही है। अभी तीन वर्ष हुए पुष्कर को भी हल्दी लगी थी और अब तुम्हें यह चिढ़ा रहे हैं। उस समय तुम

अवन्ति आकर में थे। मैं तो जानता हूँ ?

पुष्कर

अरे भाई इसमें चिढ़ाना क्या है ? धरती पर पुत्र गिरा नहीं कि घरवाले पुत्र वधू की चिन्ता में पड़े। यह छिपाता जो है। तो अपने लिये नहीं तुम्हारे लिये भाँवर घूम आया।

नागसेन

दुष्ट ! यह मेरा छोटा भाई है।

पुष्कर

जी, ऐसे लोग बड़े भयानक होते हैं। भाई की ओर तो कभी देखते भी नहीं और उधर महावर लगाने का अवसर देखा करते हैं।

नागसेन

(पैर पटक कर) चुप नहीं रहोगे तुम ··

पुष्कर

तो फिर यह छिपा क्यों रहा है ? किसी दिन हम लोगों को भोज देता। किसी दिन और कुछ नहीं तो इसी विदिशा में अश्वगन्धश्रेष्ठी की रंगशाला में ले चलता और उनके यहाँ वह जो कादम्बरी बनती है बस उसकी दो दो घूँट··

नागसेन

जैसे तुम्हें जब हल्दी लगी थी हम लोगों को कादम्बरी का निमन्त्रण दिया था।

पुष्कर

मित्र ! तुमने माँगा नहीं अन्यथा मैं तो····

नागसेन

जी हाँ आप तत्पर बैठे थे····माँगने भर की देर थी · किन्तु

यदि माँगने पर दिया भी तो क्या दिया ।

पुष्कर

तुम तो माँगने पर भी इन्हें मना कर रहे हो । तेल के साथ हल्दी तीन दिन जहाँ लगी कि फिर पूरे एक ऋतु, कम से कम तीन मास शरीर नहीं छोड़ती और यह भी क्या मूर्ख है ''उसे घर बैठाकर आप यहाँ आ गया । कहो तो कालिदास से कह दूँ जाकर उसे मेघदूत सुना आये ।

नागसेन

(हँसते हुए) तो तुम यह भी कहना चाहते हो कि तुमने मेघदूत सुना है और उसे समझा भी है। क्यों''

पुष्कर

(लोमस की ओर संकेत कर) जिस अवस्था में यह है बिना भाषा और व्याकरण के भी, मेघदूत समझना नहीं पड़ता वह तो आँखों के सामने नाचा करता है । कालिदास से पूछ देखना वह बता देंगे कि उस समय इसी की तरह यक्ष भी कुछ बीस वर्ष का था । वह भी अपनी यक्षिणी से उसी तरह दूर पड़ा था जैसे आज यह है। वहाँ कुबेर का अनुशासन था और यहाँ महाराज विक्रममित्र का अनुशासन है ।

नागसेन

ऐं''तुम महाराज कह रहे हो ? राजदण्ड के साथ भी तुम्हें परिहास सूझ रहा है ।

पुष्कर

(अकस्मात् भय से सिहरकर) भूल हुई मित्र कहना मत ''

नागसेन

तुम जानते हो विक्रममित्र के शासन में अनीति चाहे

कितनी छोटी क्यों न हो छिपी नहीं रह सकती। साधारण से साधारण ग्रामीण से भी जो बात अपेक्षित है वह मैं न करूँगा। गरुडध्वज की शपथ लेकर भी ?

पुष्कर

हाय ! तब तो मुझे भीषण दण्ड भोगना पड़ेगा।

लोमश

किन्तु इसमें कौनसी ऐसी बात है कि····

नागसेन

(गंभीर मुद्रा में) तुम नहीं जानते। अभी तो तुम्हें स्वर्गीय पुष्यमित्र के यशस्वी पुत्र और कुमार कार्तिकेय की कोटि के धनुर्धर वसुमित्र के पिता सेनापति अग्निमित्र के इस प्रासाद की रक्षा की शिक्षा भर दी जा रही है। जिस दिन तुम रक्षकों की मर्यादा में दीक्षित किये जाओगे तुम्हें धर्म और गरुडध्वज की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी।

लोमश

क्या (उत्सुकता से उसकी ओर देखकर)

नागसेन

सेनापति पुष्यमित्र ने लोक रञ्जन के लिये मर्यादा का जो बाँध बाँधा था उसमें तुम छेद न करोगे। उस मर्यादा में किस तरह के शब्द और कर्म वर्जित हैं वह तुम उस दिन जान जाओगे।

लोमश

हूँ ··किन्तु बन्धु पुष्कर ने कौनसा ऐसा अपराध कर दिया जिसके लिए····।

पुष्कर

(भयभीत होकर काँपते हुए) मैंने सेनापति की जगह महाराज जो कह दिया···यह अपराध अक्षम्य है। कदाचित सेनापति विक्रममित्र के राज्य विधान में इससे बड़ा कोई भी दूसरा अपराध नहीं है।

लोमश

(विस्मय में) महाराज कह देने में कोई अनादर है क्या ?

नागसेन

अनादर नहीं ··· अधर्म है। सेनापति पुष्यमित्र ने साकेत के दक्षिण यवन आततायी दत्तमित्र को पराजित कर धर्म और जाति की रक्षा की थी। उस आक्रमण में यवनों ने ग्रामों और जनपदों को उजाड़ दिया, ब्राह्मण और क्षत्रिय कुमारियों का अपहरण किया। सिन्धु तट से लेकर सरयू तट तक सारी भूमि आक्रांत हो उठी। सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई थी।

पुष्कर

मुझे छोड़कर यहाँ कुल नौ जन हैं। इतनी सी बात····कोई कुछ न कहे मेरा प्राण बच जायेगा।

नागसेन

कोई कुछ न कहे (सोचते हुए) ठीक है हम सभी अपने मुँह पर ताला लगा कर इस अनीति के भागी बनें, किन्तु तुम्हीं कह दोगे। जिस समय उन्होंने तुम्हारी ओर देखा तुम्हारा साहस छूट जायगा और तुम···· विक्रममित्र की आँखें सब देख लेती हैं। असत्य की आग भीतर लेकर कोई उनके सामने खड़ा भी नहीं हो सकता।

लोमश

जाने भी दें इस बात को....जो होगा होगा...दो बातें छूटी जा रही हैं मुझे जान लेने दें ..

नागसेन

क्या . कौन सी दो बातें ?

लोमश

हाँ तब यवनों के आक्रमण में क्या हुआ और आज पूर्णिमा नहीं है फिर प्रासाद में सेनापति विक्रममित्र आज क्यों आ रहे हैं ?

नागसेन

तारकासुर से हार कर देवों ने अमरावती छोड़ दिया था यवनों से हार कर राजकुमारों और महर्षियों ने साकेत, काशी, गोमठ और प्रयाग छोड़ कर विन्ध्य की शरण ली। धर्म और प्रजा की तो यह स्थिति थी उधर जो कहने के लिए महाराज था सम्राट् बृहद्रथ था वह बौद्ध विहारों में श्रमणों और श्रामणियों में रास रचा करता था।

लोमश

(विस्मय और उद्वेग में) क्या उसे प्रजा की चिन्ता न थी ?

नागसेन

(मुस्कराकर) प्रजा की चिन्ता ? प्रजा से धन ले लेने को छोड़ कर दूसरी किसी बात की चिन्ता वह नहीं करता था। (उत्तर पहाड़ियों की ओर संकेत कर) वहाँ जिसे बुद्ध विहार कहते हैं पहाड़ियों में वह जो गुफायें बनी हैं वहाँ तो जा चुके हो तुम...

लोमश

हाँ‥ कई बार और वहाँ तो बड़ा जंजाल है।

नागसेन

वह सारा जंजाल बृहद्रथ और उसके पूर्वजों ने खड़ा किया। प्रजा का धन उस जंजाल में बहता रहा और इधर बैठ गया है मन में किसी दिन उन गुफाओं में जाकर आग लगा दूँगा। (क्रोध से दहक कर) वहाँ वह काले पर्वत सा एक बुड्ढा है जो रात दिन मदिरा में चूर कबूतर सी आँख लेकर ड़िम, ग्ड़िम तिड़िम्, ड़म् बोलता रहता है‥‥कर्म के नाम पर बस उसकी जीभ चलती रहती है। मुण्डित केश किशोर और किशोरियाँ जहाँ देखिये वहीं‥ छी‥‥इन सब ने लज्जा भी छोड़ दिया है।

लोमश

किन्तु तथागत तो सारी माया मोह छोड़कर, स्त्री और पुत्र से भी मुँह फेर कर बन का रास्ता लिये थे।

नागसेन

सुना है वह काला पहाड़ कहा जाता है कि शाक्यमुनि ने मनुष्यमात्र के लिए माया मोह छोड़ दिया। उनके त्याग में सब का भाग लगेगा। अब किसी को कुछ भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं। (उसका हाथ पकड़ कर) तुम्हें तीन दिन हल्दी लगी। विवाह हो गया अब तो नहीं लगेगी ? वहाँ वह जो श्रमण हैं अभी बीस वर्ष के भी नहीं हैं कितने ही उनमें, उनके शरीर पर किशोरी भिक्षुणियाँ केशर, चन्दन, चम्पा और कमल का लेप नित्य लगाती हैं। (हाथ से संकेत कर) बरसात में वे जो पीलेपीले मेढक निकल आते हैं‥ मरने के बाद भी इन श्रमणों का रंग वही रहता है।

लोमश

(हँसते हुए) तो बरसात के पीले मेढक इन श्रमणों के पुनर्जन्म हैं।

नागसेन

साकेत और गोमठ में उन दिनों छिटपुट छोटे यज्ञ और रामायण और भारत की कथा होने लगी। सेनापति पुष्यमित्र से ब्राह्मण कर्म फिर जागने लगे। इन्हीं बौद्ध नास्तिकों और बृहद्रथ ने मिलकर षड्यन्त्र से दत्तमित्र को निमन्त्रित किया। उसने कहीं भी किसी बुद्ध विहार को हाथ नहीं लगाया। उसके लक्ष्य तो वे ही स्थान थे जहाँ वैदिक धर्म जागने लगा था। जिन ग्रामों और जनपदों में वैदिक आस्था अधिक बढ़ चुकी थी उनका ध्वंस दत्तमित्र ने सबसे अधिक किया। यह बात फिर खुल भी गई।

लोमश

अच्छा कोई प्रमाण मिले ?

नागसेन

साकेत के युद्ध में दत्तमित्र का प्रधान अंगरक्षक सेलुक सेनापति पुष्यमित्र के शस्त्रों से आहत होकर रथ से नीचे गिर पड़ा और मरने के कुछ ही पहले जब सेनापति उसके घावों का उपचार करा रहे थे उसने सब कुछ खोलकर कह दिया। कलिंग के मेघवाहन खारबलि ने भी इसी देशद्रोह को मिटाने के लिए आर्य पुष्यमित्र का पूरा साथ देकर यवनों को सिन्धु के उस पार तक खदेड़ मारा और इधर प्रजा इस समाचार से इतनी बिगड़ उठी""कि प्रजा और सेना की आज्ञा के सामने सिर झुकाकर आचार्य पुष्यमित्र को नृशंस बृहद्रथ का बध करना पड़ा। बृहद्रथ ने सम्राट् या महाराज पद को इतना अधिक कलंकित कर दिया

कि प्रजा के लिए वह पद घृणित हो गया। गरुडध्वज की छाया में उसीकी शपथ लेकर सेनापति पुष्यमित्र ने राज्य भार सँभाला। तभी से उनकी वंश परम्परा में धर्म और धरती की रक्षा के लिए शासकों को सेनानी, तलारक्ष, वंठ कहा जाता है। आचार्य पुष्य-मित्र तो अपने लिए केवल वण्ठ शब्द का ही प्रयोग करते थे जिसका सीधा अर्थ है सेवक।

लोमश

हूँ, तो इसीलिए सम्राट् या महाराज शब्द उनके वंशजों के लिए अग्राह्य और घृणित हो गया।

पुष्कर

जाने दो भाई मैंने इस वर्ष ईशान कोण पर खञ्जन देखा था किन्तु किसी युद्ध में मारा जाता तो वीरगति...

लोमश

निश्चिन्त रहो बन्धु! सेनानी विक्रममित्र अन्याय नहीं करेंगे। तुम्हारे इस अपराध को वे क्षमा करेंगे। मेरा मन यही कह रहा है।

पुष्कर

(टूटे स्वर में) जानता हूँ अन्याय नहीं करेंगे....उनका न्याय मैं देख चुका हूँ....न्याय के लिए वे अपनी आँख फोड़ सकते हैं....अपना हाथ काट सकते हैं...मेरे साथ न्याय का एक ही रूप है और वह है मेरी मृत्यु (फूट-फूटकर रोने लगता है, नागसेन और लोमश उसे सम्हालते हैं।)

नागसेन

सेनानी विक्रममित्र का प्रासाद प्रहरी मृत्यु से इतना डर रहा है?

पुष्कर

(उसी दशा में) मृत्यु से नहीं अपवाद और अनुशासन भंग के दोष से ।

नागसेन

किन्तु अब तो हो गया...

पुष्कर

अच्छी बात है तो मैं जाकर अभी कहता हूँ (जाना चाहता है)

नागसेन

तो दुहरा अनुशासन भंग करोगे ? जब तक प्रहरी बदल न जायँ तुम इस स्थान को छोड़ने के अधिकारी हो ?

पुष्कर

मृत्यु दो बार नहीं आती मित्र ! फिर अब किसी दूसरे अनुशासन की चिन्ता क्यों हो । मैं जानता हूँ मुझे मृत्युदण्ड मिलेगा तो फिर इस मन की कायरता को क्यों न निकाल फेंकूँ । (आगे बढ़ता है)

नागसेन

(उसे पकड़ हुए) हाँ···हाँ····क्या कर रहे हो । इस तरह अग्नि में न कूद पड़ो । जहाँ तक हो सके अग्नि से दूर रहो । विश्वास करो हम लोग न कहेंगे ।

पुष्कर

जानता हूँ···मैं तुम्हारे साथ इधर पाँच वर्षों से बराबर हूँ । एक नाद के पशु भी आपस में स्नेह करते हैं फिर हम तो मनुष्य हैं । मुझे तुम यथाशक्य मरने न दोगे । उसके लिए तुम सब अनीति के भागी बनोगे । तुमने अभी-अभी कहा था । आचार्य

पुष्यमित्र की मर्यादा के बाँध में अपने लिए मैं छेद न होने दूँगा। और कल भोर में क्या होगा इसे कौन जाने। अमृत की घूँट किसने पी रक्खी है जी। छोड़ दो ...... छोड़ दो। मैं रुक नहीं सकता। मृत्यु के देख लेने पर पीछे राह नहीं होती।

(नेपथ्य में) तुम लोग क्यों लड़ रहे हो जी ?

[प्रासाद के भीतर से सिंहद्वार पर दो कुमारियाँ आकर खड़ी होती हैं, दोनों की अवस्था सोलह वर्ष की-सी लगती है। जैसे जुड़वाँ बहनें हों। उनके तेज मिश्रित लावण्य की ओर किसी भी प्रहरी को देखने का साहस नहीं होता। सभी एक ही साथ सिर झुकाकर नीचे धरती की ओर देखते रहते हैं। दोनों के सिर पर राजकुमारी होने का चिन्ह सोने का रत्न जटित केश से सटा हुआ मुकुट है, जिसके कारण उनकी सुनहली केश राशि व्यवस्थित है। शरीर, वस्त्र, आयु और रूप में कछ भी स्पष्ट अन्तर न होते हुए भी एक की आँखें गहरी काली और दूसरी की नीली भूरी हैं]

पहली

तुम लोग अपना सारा तर्क...जितना लड़ना झगड़ना हो अपने निवास पर ही समाप्त क्यों नहीं कर लेते ? तुम यहाँ आये नहीं कि तुम्हारी...रगड़-झगड़ मच गई।

दूसरी

[जो ध्यान से पुष्कर की ओर देखती रही है संकेत से उसे दिखाकर] उँह...चलो बहन ..

पहली

[उसे रोक कर पुष्कर की ओर ध्यान से देखती हुई]

अरे ! यह पुष्कर तो जैसे रोते रहे हैं। अभी उसी दिन यह उस पार के बन से जीवित सिंह पकड़ लाये थे। आचार्य ने इन्हें

उसी दिन सिंहपराक्रम की उपाधि दी थी। किसी ने इनका अपमान किया ? इनके घर से कोई अशुभ समाचार मिले ?

दूसरी

नहीं...नहीं...मैं कोई दुख की बात सुनना नहीं चाहती। चलो भी हम लोगों से होगा ही क्या ?

पहली

क्यों क्या नहीं होगा ? कम से कम एक बार तो मैं जो माँग दूँ सेनापति मुझे देंगे ही, वचन-बद्ध हो चुके हैं।

(पुष्कर भाला नागसेन के कन्धे पर टिकाकर उसके पैरों पर गिर पड़ता है और सिसक-सिसक कर रोने लगता है) मैंने तुम्हें निर्भय किया, कहो क्या बात है ? दैव का विधान तो मेरे वश का नहीं किन्तु मनुष्य का विधान तो मैं एक बार बदल दूँगी।

नागसेन

उसके सिर पर हाथ रखकर आप अभय दान दें।

पहली

(झुक कर उसके सिर पर हाथ रखती हुई) नागसेन मैं तुम सब के सामने इस बात की प्रतिज्ञा करती हूँ कि इस शरणागत का अनिष्ट मेरे रहते सम्भव नहीं होगा। मैं पिछले दो वर्षों से प्रासाद में रहती आ रही हूँ, इस प्रासाद में, इस के चारों ओर जो धरती, उसके कण-कण में शरणागत की रक्षा के मन्त्र मिले हैं। सेनापति विक्रममित्र सब से बड़ा धर्म शरणागत-रक्षा कहते हैं। उन्हीं के विचार महाकवि कालिदास अपने काव्य में रख रहे हैं। आचार्य के पूर्वज भी सब से बड़ा धर्म इसी को मानते थे।

नागसेन

पुष्कर ! उठो तुम्हें अभय दान मिला है ।

पहली कुमारी

तो कहो बात क्या है ?

नागसेन

इसने आज सेनापति को महाराज कह दिया ।

दूसरी

ऐं…(भयभीत सी मुद्रा में पहली की ओर देखती है)

पहली

सखी वासन्ती ! इस प्रकार भय दिखाकर तो तुम मुझे…
(उसका सिर दोनों हाथों में लेकर हिलाने लगती है)

वासन्ती

उह (नाक के पूरे फैलाकर) खोल फेंको इस मुकुट को छू जाने के साथ ही जैसे सिर में डङ्क मारने लगता है ।

[मन्दिर की ओर से किसी राजभृत्य का प्रवेश जिसके हाथ में सोने के दण्ड पर पीला गरुडध्वज फहरा रहा है । उसे देखकर सभी प्रहरी एक ही साथ ललाट पर दोनों हाथ टेककर सिर झुकाते हैं । दोनों कुमारियाँ भी उसी प्रकार हाथ जोड़कर सिर झुकाती हैं । वासन्ती आनन्द विभोर होकर आगे बढ़ती है]

अहा ! कितनी सुन्दर ध्वजा है । गरुड के पंख नीलम, माणिक्य और कहीं मोती के बने हैं ।

राजभृत्य

(पीछे हटते हुए) हाँ…हाँ छू न लीजियेगा अभी ?

वासन्ती

हम लोग स्नान कर चुकी हैं भद्र !

राजभृत्य

श्री विष्णु और शङ्कर की पूजा तो नहीं की अभी आप लोगों ने....

वासन्ती

(अकस्मात् रुककर अपने को सम्हालने की चेष्टा में) अभी तो नहीं।

राजभृत्य

तब अभी आज इस गरुडध्वज को छूने का अधिकार आपको नहीं है। स्नान कर लेने से शरीर तो आप लोगों का शुद्ध हो चुका है किन्तु जब तक मन शुद्ध न हो जाय, अखिल लोक-गौरव यह गरुडध्वज आप नहीं छू सकतीं।

पहली

हम लोगों के मन में क्या हुआ है जी? (आवेश में उसकी ओर देखती है)

राजभृत्य

किसी के मन में कुछ नहीं होता मलयकुमारी!...यह सब तो शुद्धि की क्रियायें हैं, जो सबको करनी होती हैं। तलारक्ष आचार्य विक्रममित्र के मन में क्या रहता है कि वे नित्य ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर वेतवा के जल में डूबे रहते हैं और फिर पूरे एक पहर की पूजा, यज्ञ और अनुष्ठान के बाद गरुडध्वज को अपनी आँखों से लगाते हैं। आप रुष्ट न हों। सेनापति...आप तो जानती हैं अनुशासन को ढीला नहीं होने देते। तो क्या राजकुमारी मलयवती सचमुच खिन्न हो उठीं?

मलयवती

नहीं जी, विधान और अनुशासन के द्वारा अध्ययन के लिए

तो मैं यहाँ भेजी गई। संगीत, चित्र और अन्य ललित कलाओं का अध्ययन तो गौण है। (मुस्कराकर) राजकुमार का काम मुझ राजकुमारी को करना पड़ रहा है। देख रहे हैं यह विडम्बना....लोग कहते हैं ब्रह्मा बड़ा चतुर है सो उसके चार-मुख हैं।

राजभृत्य

(हँसते हुए) सो सिद्ध सरस्वती महाकवि कालिदास कहते थे.. अभी कल ही तो संध्या के समय कि मलयकुमारी मलयवती और काशिराज की कन्या कुमारी वासन्ती दोनों ही को राजकुमार होना चाहिये था।

मलयवती

क्यों ? क्यों ? महाकवि को यह क्या सूझी है ? इस पृथ्वी की सभी कुमारियाँ कुमार हो जायँ तब तो अच्छी रहे। कह देना महाकवि से इस तरह की उलटफेर में कुमारों को कुमारियाँ होना होगा और महाकवि भी कहीं उस चक्र में न आ जायँ।

वासन्ती

(हँसती हुई) ओह तभी तो ठीक पड़ता। सेनापति को काव्य सुनाते समय हम लोगों की ओर देखते भी नहीं जैसे कुमारी हो जाना कोई बड़ी हेठी है।

मलयवती

देखिये जी ध्वजाधारी महोदय ! महाकवि से इन वासन्ती सखी के अभियोग की चर्चा कर दीजियेगा। सेनापति से आँखें बचाकर कभी-कभी इनकी ओर भी देख लिया करें। (वासन्ती दाँत तले ओठ काटती है)

राजभृत्य

क्षमा करें। आप लोगों से बात में निकल जाने के लिए तो अभी दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। मैं तो यहाँ इस प्रहरी मंडल को सेनापति का आदेश देने आया था।

पुष्कर

(भय से) क्या....क्या...कहते हैं...?

राजभृत्य

अरे! भाई अभी तुमने कुछ सुना भी नहीं तब तक तुम्हारी साँस आकाश में अटक गई। सुन भी तो लो।

(लोमश एक टक उसकी ओर देखता है, उसके ओठ खुल जाते हैं और दाँत दिखलाई पड़ते हैं) आप लोग सावधान हो सुनें।

पुष्कर

हे ईश्वर...(विषाद की छाया उसकी आकृति पर फैल जाती है)

राजभृत्य

हाँ तो सिंह-विक्रम पुष्करसेन कौन हैं ? (पुष्कर थर-थर काँपने लगता है)

मलयवती

(उद्वेग में) यहाँ नहीं हैं मैंने उन्हें भगवान् शंकर पर चढ़ाने के लिए सहस्रदल कमल के लिए भेजा है।

राजभृत्य

यह तो अच्छा नहीं हुआ। सेनापति ने उन्हें अभी बुलाया है अभी...थोड़ी देर भी असह्य होगी।

मलयवती

सेनापति की आज्ञा से ही मैं इन्हीं प्रहरी सैनिकों में किसी

न किसी को नित्य भेज देती हूँ। इस समय जो आवश्यक काम हो उसके लिए मैं स्वयं प्रस्तुत हूँ।

राजभृत्य

तब मैं जाकर पूछ आऊँ। अन्य सभी प्रहरी नगर की ओर सिंहद्वार पर चले जाँय। यहाँ मन्त्रि-परिषद् के लिए मृगचर्म पड़ेंगे।

मलयवती

मन्त्रि-परिषद् ?

राजभृत्य

हाँ राजकुमारी...

मलयवती

मन्त्रि-परिषद् मृगचर्म पर ही बैठता है ? किन्तु यहाँ तो अभी तक मैंने कभी भी मन्त्रि-परिषद् की बैठक नहीं देखी। मन्त्रि-परिषद् तो पाटलीपुत्र के सुगांग में या साकेत....

राजभृत्य

विदिशा का गौरव इन नगरों से अधिक है। शुङ्ग-परम्परा में राजधानी का पद तो केवल विदिशा को मिला है। सम्भवतः आज कोई अधिक महत्व का निर्णय होगा। (सैनिकों से अब आप लोग उधर जायँ और पुष्कर के लिये मैं पूछ देखूँ।)

(सबका प्रस्थान। पुष्कर भय से काँपता हुआ खड़ा है।)

पुष्कर

राजकुमारी...

मलयवती

तुम वीर पुरुष हो। धैर्य छूट जाने पर तो जीवन भी मृत्यु है और फिर मृत्यु से डरनेवाला जीवन का सुख भी नहीं ले

सकता। जाओ...निकल जाओ...प्राचीर के किसी भी गुप्त द्वार से और यदि कोई रोके तो झट कह देना राजकुमारी मलयवती के लिए सहस्रदल कमल के लिए जा रहे हो। समझे! ...इस तरह काँपते रहोगे तो कोई न कोई प्राचीर प्रहरी संदेह में तुम्हें पकड़ लेगा। तब तक मैं तुम्हारे लिए यत्न करूँगी। जितना जल्दी हो सके कमल लेकर लौट पड़ना जिससे कोई यह न समझ ले कि राज दण्ड से बचाने के लिए तुम्हें मैंने भगा दिया।

(पुष्कर का प्रस्थान)

वासन्ती

तो क्या तुम समझती हो कि तुम्हारे कहने से यह दण्ड से बच जायेगा? अभी उसी दिन तो सेनापति ने पूछा था कि हम लोग उन्हें क्या समझती हैं। जब तक हम दोनों में कोई भी उत्तर दे वे कह बैठे राजकुमारियाँ कहीं भूलकर किसी घृणित पद पर न बैठा दें इसलिए मैं पहले ही कह दूँ...मैं सेवक हूँ...सेनापति धर्म और जाति का सबसे बड़ा सेवक है। संकट में वह प्रजा के आगे रहकर या तो विजय का वरण करता है, या मृत्यु का।

मलयवती

जानती हूँ सखी.........किन्तु अब तो मुझे उसी वचन का विश्वास है जो उन्होंने मुझे उस दिन दिया...

वासन्ती

किन्तु उसका उपयोग तुम इसी काम में करोगी? और तुम्हारा वह संकल्प...

मलयवती

ना....ना...इस समय उसकी चर्चा छोड़ो...मैंने उसे अभय दान...शरणागत की रक्षा के आगे इस समय कोई भी दूसरी कामना मैं नहीं कर सकती। और फिर यदि वे मेरे प्राप्य होंगे तो किसी दिन ऐसे आ जायेंगे जैसे जन्म जन्मान्तर के वे मेरे ही हों। जानलो किसी के दान के रूप में मैं उन्हें स्वीकार न करूँगी। चाहे स्वयं सेनापति विक्रममित्र ही उनका दान क्यों न करें।

वासन्ती

तब···है तुम्हें विश्वास वे कलिंगसेना के रहते हुए तुम्हें प्रणय के लिए प्रेरित करेंगे।

मलयवती

महाकवि ने उस दिन कुमार सम्भव का वह प्रसंग...जहाँ पार्वती ने तप किया है तुमने सुना था।

वासन्ती

क्यों नहीं...तुमसे अलग मैं कहाँ रही हूँ ?

मलयवती

तब...मुझे अपने में विश्वास है। मैं उन्हें अपनी तपस्या से खीचूँगी......निर्विकार शंकर प्राप्त हो गये और वे प्राप्त न होंगे ?

वासन्ती

यदि वे तपस्या से मिल जायँ तब तो (उत्तर पूर्व पहाड़ की ओर हाथ उठाकर) वहाँ विहार में वे जो किशोरी भिक्षुणियाँ हैं उनमें किसी को मिल जायँगे वे और तुम ताकती रह जाओगी। टुकुर-टुकुर...

मलयवती

(उसकी पीठ पर धक्का देती हुई) जैसे तुम ताकती रह गईं टुकुर-टुकुर जब तुम्हारा प्रेमी तुम्हें वन में छोड़कर भाग गया ?

वासन्ती

वह मेरा प्रेमी था ? वैसा ही जैसे तुम्हारे अवन्ती के कुमार विषमशील हैं ?

मलयवती

उससे कहीं बढ़कर। वे तो माता आर्या सौम्यदर्शना के लिए ही दुर्लभ हैं फिर मुझे कहाँ मिलते हैं ? यहाँ आने पर केवल दो बार उनके दर्शन हो गये। मेरे इस जन्म की सिद्धि तो इतने ही में हो गई। वह तो तुम्हें मिल गया था। तुम्हारे पिता काशिराज के प्रासाद में तुम्हारे साथ महीनों रहा और फिर तुम्हें साथ लेकर कई दिन रास्ते में भी...इस बीच अवश्य ही उसने तुम्हारा सर्वस्व लेकर अपना सर्वस्व तुम्हें दे ही दिया होगा। सच कहो तुम उस पर मोहित हुई थीं ?

वासन्ती

(गहरी निराशा और दुःख की मुद्रा में) तुम जानते हो मेरे पिता बौद्ध थे। धर्म-चक्र के उपासक होने के कारण देवप्रिय अशोक की तरह तथागत की भूत दया का प्रचार ही उनके राज्य का मुख्य काम था।

मलयवती

यह तो अपने विश्वास की बात है इसके लिए उन्हें कोई दोष क्या देगा ?

मगध में सेनापति पुष्यमित्र ने बौद्ध राजा बृहद्रथ का बध कर वैदिक और पौराणिक धर्म की फिर से स्थापना की। उनके बंश के दूसरे सेनापतियों के समय में भी उन्होंने अश्वमेध की जो विधि चला दी थी चलती ही रही। मेरे पिता के समय तक आते-आते काशी मण्डल में भी बौद्ध विधान मिटने लगा और एक दिन ऐसा हुआ कि उनके भवन के सामने ही दुर्गा को भैंसे की बलि दी गई।

मलयवती

तब तो उन्हें घोर क्लेश हुआ होगा !

बासन्ती

स्वाभाविक है। उन्होंने निश्चय किया कि वे सपरिवार काशी छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायँगे किन्तु जाते भी कहाँ ? (उसका स्वर भारी हो उठा है)

मलयवती

हाँ-हाँ...बहन क्या करती हो यह ? रोने से क्या होगा अब...जो बिगड़ गया रोने से यदि लौट आता तब तो फिर....

बासन्ती

(सम्हलने की चेष्टा में) हाँ तो बस काशी से निकल जाने के लिए उन्होंने शाकल के उस यवन राजकुमार को बुलाकर मुझे सौंप दिया।

मलयवती

तो इतनी दूर से उस यवन कुमार के बुलाने की क्या आ पड़ी ? किसी भी अन्य देशी राजकुमार को तुम दी जा सकती थीं।

वासन्ती

नहीं...मुझे कोई भी अन्य राजकुमार स्वीकार नहीं करता। पिता बौद्ध जो थे। सिन्धु के तट से लेकर गङ्गासागर तक शुङ्ग सेनापतियों और मेघवाहन खारबलि ने मिलकर वैदिक यज्ञ और कर्मकांड की ऐसी लहर चला दी कि विहारों में ही बचे-खुचे बौद्ध रह गये। राजा और प्रजा में तो कहीं कोई अपने को बौद्ध कहने का साहस ही नहीं करता....

मलयवती

हूँ...तब फिर इस दशा में तुम्हारे पिता करते ही क्या? उस स्थिति में कोई भी यही करता। तब फिर सेनापति विक्रम-मित्र ने क्यों...

वासन्ती

यही तो पूछना है मुझे। धर्म और जाति के किस उपकार के लिए उन्होंने मुझे इस प्रासाद में बन्द कर रक्खा है? सोचती हूँ...

मलयवती

क्या?...

वासन्ती

यही कि किसी दिन ऐसा होता....(गम्भीर हो उठती है)

मलयवती

(उसकी ओर निर्निमेष देखकर) कैसा होता सखी! और तुम्हारी आकृति से प्रकट हो रहा है तुम कुछ ऐसा करना चाहती हो जिसमें हम सबको जन्म भर रोना पड़े। मैं तो जब से तुम आई हो....मुझे ऐसा लगता रहा है तुम मेरी बहन हो भाई भी हो। तुम्हारे न रहने से तो मैं....न तो इतना सावधान रहती...

[मुझसे बराबर भूल होती...

वासन्ती

मैं कह रही थी संसार से सभी धर्म मिट जाते, किसी दिन, बौद्ध, वैष्णव, शैव कोई नहीं रहता। जिसकी चल जाती है अपने ही विश्वास की भूल को, चाहे उसे धर्म कहो....चाहे और कुछ दूसरों पर लादने लगता है। वह देखो यह हरिण, वह मयूर और वह गोवत्स उनमें तो धर्म का कोई झगड़ा नहीं है मनुष्य भी क्या उस तरह नहीं रह लेगा।

मलयवती

हो सकता है किन्तु मनुष्य अब अपने धर्म और विश्वास पर इतनी दूर जा चुका है कि वह लौट नहीं सकता। सम्भव है आगे महासमुद्र हो, कैलाश पर्वत आगे खड़ा हो....

वासन्ती

अच्छा तब...

मलयवती

तब जो उसके पीछे चलेंगे ठोकर मारकर उससे कहेंगे मूर्ख है दायें-बायें क्यों नहीं हो जाता।

वासन्ती

यही तो उलझन है। बौद्ध भी ठीक नाक के सीध में चलते रहे आज ये वैष्णव भी नाक की सीध में चल रहे हैं किसी दिन बौद्धों की तरह इन्हें भी दूसरे ठोकर मारकर दायें बायें करेंगे।

मलयवती

किन्तु बहन तुम जैसे ऊपर के मन से यह सब कह रही हो...भीतर तो कुछ और है जिसे तुम छिपा रही हो। देखो

तुम अपना कुछ भी अनिष्ट करोगी तो मैं भी जी न सकूँगी। गाँठ बाँध लेना मैं जो कह रही हूँ। मैं भी कहाँ सुखी हूँ ? मेरी जगह कोई पुत्र आया होता तब न तो मलयपुर का सिंहासन सूना होता और न मुझे वैदिक विद्या के लिये यहाँ आना पड़ता। कहाँ पाण्ड्यपुरी कहाँ यह विदिशा ! बीच में कितने पर्वत, वन, नदी, नद। मुझे यहाँ तक पहुँचाने पूरी एक सेना आई थी।

वासन्ती

यहाँ विदिशा तक सेना आई थी ?

मलयवती

वह सेना यहाँ तक कैसे आजाती ? बीच में सातवाहन राज्य जो था।

वासन्ती

तब...

मलयवती

पाण्ड्य सीमा के अन्त में कुमार स्वातिशातकर्णि स्वयं कितने ही रथ और गज सैन्य लेकर मिले। मेरे साथ तो पाण्ड्य पुरोहित, उपमन्त्री और केवल तीन और सैनिक....जिनमें प्रसिद्ध पाण्ड्य धनुर्धर कुमार कार्तिकेश्वर भी थे यहाँ तक आ सके।

वासन्ती

शातकर्णि ने पाण्ड्य सेना को अपनी सीमा में यात्रा के लिए भी नहीं आने दिया ?

मलयवती

नहीं...पुरोहित के साथ जिस रथ पर मैं बैठाई गई उसकी ध्वजा और छत्र सुवर्ण और रत्नों की चमक से दहक रहे थे। कुमार स्वाति स्वयं उस रथ के सारथी बने।

वासन्ती

एं...

मलयवती

उनके तेज से मैं ऐसी सहम गई कि किसी ओर आँख उठाना भी न हो सका। अपनी ओर से तो वे मुझे बराबर बहन कहकर सम्बोधित करते थे। दर्शनीय स्थानों को दिखलाते और उनकी कथा कहते थे। भृगुकूट दिखलाकर जब वे लोक-जयी परशुराम की कथा कहने लगे मुझे लगने लगा वे स्वयं परशुराम हैं।

वासन्ती

भाग्यवती हो बहन तुम...

मलयवती

हाय! हाय! क्या कह रही हो? उनसे एक शब्द भी बोलने का साहस मेरा नहीं होता था। हाँ और ना कहने में (गले पर हाथ रख कर) प्राण यहाँ आ टिकता। मैं न होती उस यात्रा में कोई पाण्ड्य कुमार होता तो वह भी उनसे बहुत कुछ कह जाता। ऐसी विवशता से तो अच्छा है एक दम नरक में डूब जाना, और तुम कह रही हो मैं भाग्यवती हूँ।

वासन्ती

मेरी दशा से अपनी तुलना करो बहन!...मलयपूर से विदिशा तक आने में राजकुमारों को तुम्हारा सारथी बनना पड़ा। और मैं चोरी से अपने पितृगृह से विदा की गई, वन्य जीवों से रक्षा भर भी साधन मेरे साथ न रहा और अन्त में सेनापति विक्रममित्र ने अपने गुप्तचरों से पता लगा कर मेरा रास्ता बन्द कर दिया....मेरे साथ के सभी जन अपने प्राण लेकर

भाग निकले...कुछ दूर पर शस्त्रों की ध्वनि सुनाई पड़ी और उसके बाद सेनापति ने मुझे...

मलयवती

सेनापति ने कुछ कहा भी उस समय ?

वासन्ती

वे शब्द तो मुझे अब उसी दिन भूलेंगे जब मैं उस लोक की यात्रा करूँगी।

मलयवती

हूँ...कहा क्या था उन्होंने...

वासन्ती

बेटी ! निर्भय रहो। तुम्हारा किसी प्रकार का अपकार मेरी रक्षा में नहीं हो सकेगा। यवन मनेन्द्र अपने घोड़े पर भाग निकला, किन्तु निकल नहीं सकता। मध्यमिका तक के सारे नाके मैंने बन्द करा दिये हैं। वन में भूख से तड़प कर सिंह के पेट में जायेगा या मेरे सैनिक उसे पकड़ कर ले आवेंगे। जीवित मिलने पर मैं उसे दिखा दूँगा कि किसी भी अन्तर्वेद की कुमारी उस यवन दस्यु की भार्या कैसे बनेगी ?

मलयवती

और अभी तक उस राजकुमार का पता नहीं चला ?

वासन्ती

क्यों नहीं। मध्यमिका में सब ओर से निकल कर भी वह जा फँसा। शिवि-संघ की सीमा वह पार कर चुका था। किन्तु होनी भी तो कुछ है। (एकाएक रोने लगती है)

मलयवती

(उसका सिर अपनी छाती पर रखकर उसकी पीठ पर थपकी

देती हुई) ऐसा नहीं बहन ! रोने पर तुम्हारे मेरी छाती टूक-टूक होने लगती है। (भरे कण्ठ से) ला तब मैं भी रोने लगूँगी।

वासन्ती

(सम्हलने की चेष्टा में) नहीं...नहीं, ऐसा नहीं...बहन ! रोने का नाम न लो। तुम कुमार विषमशील की भावी रानी और यदि भूतनाथ की दया हुई तो उनके पुत्र की माता होकर तुम भविष्य में इस देश की सबसे बड़ी राजमहिषी होगी। सेनापति विक्रम-मित्र तो हर समय यही रटते हैं कि किस दिन वे चिरञ्जीवी विषमशील को अवन्ती पर स्थापित कर महाकाल के मन्दिर में उन्हें चक्रवर्ती बनायेंगे।

मलयवती

तुम तो एकही साँस में मुझे यह सब इतना दे गईं जिसकी कल्पना भी मेरे उठाये न उठेगी।

वासन्ती

देखना किसी दिन तुम मुझे स्मरण कर मेरी बात को सच पाओगी। अभी उसी दिन की तो बात है आर्या सौम्यदर्शना को सेनापति यही समझा रहे थे। जब वे रोने लगीं वे भी रोपड़े, और गरुडध्वज की शपथ लेकर उन्होंने प्रतिज्ञा भी की थी कि वे कुमार विषमशील को अवन्ती का ही नहीं सारे कलिंग, मगध, अन्तर्वेद और उत्तरा खण्ड का चक्रवर्ती सम्राट् बना कर दम लेंगे। तुम्हारे कारण पाण्ड्य भी उनके राज्य में रहेगा। प्रति-ष्ठान के शातकर्णि उनके मित्र होंगे।

मलयवती

(आँखें मूँद कर) यह स्वप्न तो स्वर्ग से भी मोहक है

सखी तुम तो मधु की वर्षा कर रही हो।

वासन्ती

मैं दुख से जल जो रही हूँ। दुखी प्राणी सत्य का स्वरूप देख लेता है सखी !

मलयवती

जहाँ यह म्लेच्छ क्षत्रप अवन्ती से भागा...राहु से चन्द्रमा को मुक्त भर होने दो फिर तो वह चाँदनी फैलेगी जिसमें इस देश में एक भी प्राणी अपने को दुखी नहीं कहेगा। सेनापति तुम्हारे दुख का भी निवारण करेंगे।

वासन्ती

(मुस्कराकर) किन्तु मेरा दुःख इस धरती की सीमा से भी बड़ा हो चुका है इस देश में सुख के मेघ भी बरसें तो वह न मिटेगा। भला सोचो तो अभी तो मैं पूरे सोलह की भी नहीं हुई...अभी तो यह सारा जीवन पड़ा है इसका क्या होगा ?

मलयवती

तो क्या तुम उन यवन कुमार को प्रेम करने लगी थीं ?

वासन्ती

यदि तुम मेरा विश्वास करो...फिर न भी करो तब भी मुझे यहाँ तो सच ही कहना होगा। मेरे जीवन का अब एक मात्र सहारा भी तो सत्य ही है और सब तो छूट चुका। इस अन्तिम अवलम्ब के छोड़ देने पर तो मेरे नीचे से पृथ्वी भी निकल जायेगी। (गंभीर होकर सोचने लगती है। शोक और सन्तोष के चिन्ह उसकी आकृति पर बारी-बारी आते रहते हैं)।

मलयवती

(उसे दोनों हाथों में पकड़कर उसके कन्धे पर अपना सिर रख

देती है) हाय ! क्या करूँ कैसे सहूँ बहन तुम्हारा यह क्लेश...

वासन्ती

(संयत मुद्रा में) मुझे अब कोई क्लेश नहीं है बहन ! क्या करूँ रोकना चाहती हूँ किन्तु जैसे कोई वस्तु हृदय चीरकर बाहर आना चाहती है। हाँ तो सुनो...

मलयवती

(सीधी होकर) नहीं तुम्हारा चित्त ठिकाने नहीं है फिर कभी सुन लूँगी।

वासन्ती

यह नहीं हो सकता। तुम्हारा विश्वास मैं पा चुकी हूँ। अब जो मेरा बचाव उससे नहीं हुआ तो फिर बेतवा की धार बनी है। सुनो जो कुछ भी हुआ तुमसे कह कर मैं अपना बोझ कुछ कम कर सकूँगी।

मलयवती

इस समय रहने देती...फि ..र

वासन्ती

नहीं जी....जो बात मेरे मुँह से निकलती ही नहीं... जिसके निकलने के पहले ही मेरी जीभ को लकवा मार जाता वही बात निकल रही है। बीस दिन मेरे पिता के भवन में रहा वह.. चार दिन उसके साथ मैं रास्ते में भी रही किन्तु मैं उसे देख नहीं सकी। उसके देख लेने का अवसर मुझे मिला ही नहीं। पिता चाहते थे कि यह बात तब तक छिपी रहे जब तक उसके साथ मैं सिन्धु पार न कर जाऊँ... इसीलिए उन्होंने उसके सामने मुझे जाने नहीं दिया, जिसमें किसी को शंका भी न हो।

मलयवती

किन्तु उसका काशी में आना कैसे छिप सकता था ?

वासन्ती

छिप तो बहुत कुछ जाता किन्तु जिसने मुझे पैदा किया उसमें इतनी बुद्धि नहीं थी। उसकी यात्रा का उद्देश्य धर्म बनाने के लिए वे उसे सारिपत्तन के महाश्रमण के पास ले गये। उसने चैत्यों की परिक्रमा की। विहार के अवशेष अंश का उसने निरीक्षण किया। भिक्षुओं के दान और विनय के पाठ का कार्य वहा तीन दिन चलता रहा। उसके बाद वह राज भवन में टिक रहा।

मलयवती

हूँ....

वासन्ती

उसका वहाँ इस तरह पड़ा रहना गुप्तचरों के लिए सन्देह का कारण बना और मेरे पिता की सारी सावधानी पर भी बात फूट गई।

मलयवती

कोई बात नहीं जब तुमने उसे देखा ही नहीं तब तो तुम सब ओर से पवित्र हो। तुम्हें कलंक लगाने वाले की जीभ काट ली जायेगी और आँखें फोड़ दी जायँगी। भला यह भी कोई बात है!

वासन्ती

(हँसती हुई) किसका-किसका मुँह बन्द करोगी बहन! लोक निन्दा रोकने की शक्ति रामचन्द्र में नहीं हुई और सीता सी सती को बनवास करना पड़ा। राजरानी को और वह भी उस दशा में

जब वे गर्भवती थीं। उनके दो पुत्र वशिष्ट के आश्रम में पैदा हुए। लोक निन्दा भी कभी राजदण्ड से दबती है। दबाने पर तो ज्वाला मुखी की तरह उसका विस्फोट होता है। लक्ष्मण ने जिस पराक्रम से मेघनाद का वध किया था वही पराक्रम लोक-निन्दा के आगे दब गया और उन्हें ही जानकी को वन में छोड़ना भी पड़ा?

मलयवती

हाय! बहन तब क्या होगा?

वासन्ती

प्रकृति किसी किसी को रोने के ही लिए, लोक निन्दा में मर मिटने के लिए ही बनाती है। और मेरे लिए तुम इतनी चिन्ता न करो। मैं जानकी की तरह गर्भवती और विवश नहीं हूँ। अभी मेरी पाँखें फैल रही हैं मैं फुर्र से उड़ जाऊँगी।

मलयवती

हाय! दैव! तुम इतने दुःख में भी परिहास कर रही हो?

वासन्ती

क्या करूँ? अब कौन नहीं जानता कि काशिराज की कन्या कुमारी वासन्ती शाकल के यवन राजकुमार को दान कर दी गई और सेनापति पुष्यमित्र ने उसे रास्ते से ही पकड़ लिया और वह कुमार मध्यमिका से पश्चिम अकेले लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसमें कौन सी बात छिपाई जा सकती है? कैसे छिपेगी?

मलयवती

तो वह कुमार मर भी गया?

वासन्ती

हाँ...वह भी अकेले। जहाँ उसका कोई भी अपना सगा नहीं था। मरने के समय उसके मुँह में किसी ने दो बूँद जल भी नहीं डाल दिया (जैसे किसी गहरी पीड़ा को दबाती हुई जिसमें उसका ओठ उसके दाँतों के नीचे जा पड़ता है, लम्बी साँस खींच कर) मैं यहाँ इस प्रासाद में राजकुमारी बनी विचर रही हूँ...मेरे लिए उसका प्राण ही गया। इस समय तक तो मैं उसके राज भवन में पैर की लाक्षा फैलाती रहती।

मलयवती

(एकटक उसकी ओर देखकर) अरे! तुम तो उस पर अनुरक्त जान पड़ती हो।

वासन्ती

थी तो नहीं...किन्तु अब हो रही हूँ...ऐसे रह जाने से तो अच्छा है किसी अनुराग में पड़े रहना। बिना अनुराग के यह जीवन भी क्या रहेगा?

मलयवती

हँसी न करो बहन! जिसे देखा ही नहीं उसका अनुराग क्या जी? उसका राजभवन तुम्हारे पैरों की लाक्षा से रँग उठता? दुःख और परिहास दोनों साथ-साथ ले चल रही हो?

वासन्ती

इसमें कुछ झूठ है क्या? अब तक क्या महीनों पहले ही मैं शाकल पहुँच न गई होती? और वहाँ पहुँच जाने पर तो वही होता।

मलयवती

देखो कण्ठ से ही शब्दों को न निकालो...हृदय से . हृदय

से। तुम्हारी आकृति...तुम्हारी सारी चेष्टायें कह रही हैं...जैसे तुम उस पर अनुरक्त हो चुकी थीं।

वासन्ती

कह तो दिया तब नहीं किन्तु अब अनुरक्त हूँ।

मलयवती

यह कैसे सम्भव हो सकता है उसके निकट रह कर अनुराग नहीं बढ़ा और अब जब वह...

वासन्ती

हाँ इसी लिये। उसका न होना ही तो अब मेरे अनुराग का कारण है। इन यवनों के बारे में काशी में बराबर चर्चा चलती रहती थी। मैंने भी सुना था ये अल्प-प्रसाद. अनृत, महाक्रोधी और अधार्मिक होते हैं। युद्ध में बालक और अबला का भी ये बध करते हैं, मद्य से इनकी आँखें सदैव लाल चक्र की तरह घूमती रहती हैं। कहने को तो ये राजा बनते हैं किन्तु मूर्धाभिषिक्त नहीं होते। जब मुझे पता चला मैं ऐसे यवन राजकुमार को दी जारही हूँ, मैं भय से काँप उठी और अपने मन की सारी शक्ति से उसे घृणा करने लगी। ऐसी बात न होती तब तो लुक-छिप कर उसे मैं देख तो लेती ही।

मलयवती

तब तुम्हारा अनुराग उस पर क्या होगा ?

वासन्ती

इस तरह मरकर...मेरे लिये प्राण देकर अब वह ..मेरे लिये तो वह गंगा और कैलाश से भी अधिक पवित्र हो चुका है। पवित्र और निर्दोष की जब मुझे कामना होती है उसका कोई कल्पित रूप मेरी आँखों में आ जाता है....मेरे मन में बस

जाता है। और सुनोगी कुछ...

मलयवती

नहीं...नहीं अब कुछ न कहो...तुम्हारे शब्दों से कहीं अधिक आग तो तुम्हारी आँखें फेंक रही हैं।

(मन्दिर में घण्टा और शंख की ध्वनि। कई कण्ठ से वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण।) पूजा समाप्त हो गई। अन्त की रुद्री पढ़ी जा रही है। चलो हम भी देवता पर अक्षत और फूल चढ़ा लें।

वासन्ती

जाओ बहन...जिसे अपनी कामनायें पूरी करनी हों...पति, पुत्र और राज्य की भिक्षा माँगनी हो, देवता की प्रार्थना करे। किस कामना से वहाँ मैं जाऊँ...मुझे अब क्या लेना है ?

मलयवती

कुछ नहीं ? दर्पण में एक बार अपना मुख देख लो। अभी बहुत दूर जाना है तुम्हें....

वासन्ती

देख चुकी हूँ रास्ते में लोग रथ, हाथी और शिविका पर भी चलते हैं। उनके सेवक सखा और रक्षक भी साथ होते हैं, आमोद प्रमोद के सारे साधन भी होते हैं और उसी रास्ते पर कहीं कोई दण्ड और कमण्डल के भरोसे ही चलता रहता है। किसी दिन उसकी यात्रा भी पूरी हो जाती है।

मलयवती

(अवहेलना से) अच्छी बात अभी तो तुम्हारा यह सोलहवाँ चल रहा है देखूँगी। कैसे तुम्हें...सौन्दर्य की यह अतुल सम्पत्ति लेकर तुम जाती कहाँ हो...किसी राजकुमार के

अन्त:पुर में तुम्हारे नूपुर, रुनक झुनक झुन, रुनुक झुनक झुन बोलते रहेंगे। तुम्हारे पैर का लाक्षारस उसके प्रांगण को रँगता रहेगा।

वासन्ती

(कड़े स्वर में) कौन होगा वह राजकुमार जो आग से खेलने चलेगा? दूसरे खिलौने उसे नहीं मिलेंगे क्या?

(मलयवती का मन्दिर की ओर प्रस्थान। वासन्ती वहीं खड़ी होकर कुछ देर आकाश की ओर देखती रहती है। उसी प्रकार वह ऊपर देखते ही आगे चौतरे पर बढ़ जाती है। उसके शरीर पर सूर्य की प्रखर किरणें पड़ने लगती हैं। दक्षिण की ओर से मयूर बोलता हुआ उड़कर उसके पैर के पास ही उतरता है। मोर के पंख उसके अधोवस्त्र में उलझ जाते हैं।)

वासन्ती

(झुककर उसे पकड़कर अपने सामने की ओर ले जाती है और वहाँ बैठकर उसके पंख पर हाथ फेरने लगती है। मोर उसकी गोद में मुँह डालकर उसके कन्धे के ऊपर चोंच निकाल लेता है।)

कहो मित्र! कोई संदेश है?

(मोर आँख बन्द कर उसके कपोल पर सिर रख देता है।)

वासन्ती

(हँसती हुई) तो अब मेरे कपोल के साथ तुम खेलोगे? किन्तु ठीक तो है तुम तो अपने अधिकार के भीतर हो। मैं जो अपने अधिकार के बाहर जा रही थी....तुम्हारे रहते हुए मैं दूसरे पति के साथ चल पड़ी इसीलिए यह सब इतना हो गया। (उसके कण्ठ को अपने कण्ठ से लपेटती-सी) आह! उस बनैले

मार्जार ने जब तुम्हारी मयूरी को तोड़ दिया........तुम्हारा वह मर्मवेधी क्रन्दन...रात दिन एक कर मैं तुम्हें लेकर पड़ी रही। मेरे हाथ से ही तुम दूध पीते रहे। काशी के मेरे राजभवन के उत्तर वह जो बन था तुम्हारे साथ कभी-कभी सारा दिन मैं उसी में भटकती रही....तुम झाड़ियों में घुसकर अपनी चोंच से मिट्टी हटाकर बिच्छू और सर्प का भोजन किया करते थे और मैं दूर पर बैठ कर तुम्हारी यह लीला देखा करती। बिना मयूरी के मयूर जीवित नहीं रहता और तुम जी गये मुझे ही अपनी मयूरी बना कर.....

(मोर अपने पंख समेट कर उसकी गोद में सो जाने का उपक्रम करता है। वासन्ती उसकी पीठ थपथपाती रहती है)

(लोमश का प्रवेश)

लोमश

राजकुमारी....

वासन्ती

(उसकी ओर उनीदी आँखों से देखकर) क्या है ?

लोमश

आश्विन की इस धूप में ज्वर आ सकता है ?

वासन्ती

कुछ आये भी तो मेरे लिए....मेरे लिए अब आने को कहीं कुछ शेष नहीं। अभी तो तुम्हें नगर की ओर सिंहद्वार पर रहने का आदेश मिला था फिर तुम यहाँ कैसे आ टपके ?

लोमश

यहाँ मृग चर्म डालने हैं मन्त्रि-परिषद् के लिए....

वासन्ती

हूँ ...(आँख मूँद लेती है। लोमश विस्मय से उसकी ओर देखता है)

लोमश

चलें, मैं इस मोर को आपके साथ आपके कक्ष में लेता चलूँ।

वासन्ती

यह मेरा बाल सखा है। मेरे साथ तो यह बस मैं जहाँ चाहूँ जा सकता है। उस दिन शस्त्रों की मार में भी यह मेरे साथ ही रहा। आचार्य को मेरे निकट यह नहीं जाने देना चाहता था। रोके न होती तो यह उन पर चोंच चलाये न मानता।

लोमश

यह मोर...

वासन्ती

हाँ....हाँ...आसक्ति जिस किसी की हो प्राण का मोह नहीं करती यह भी तो जीव है ?

लोमश

(मन्दिर की ओर देखकर) आ रहे हैं लोग तो मैं जाऊँ.....

वासन्ती

तुम जाओ अपना काम करो...भद्र ! (प्रस्थान)

[वासन्ती फिर मोर के सिर पर अपना सिर झुका लेती है। उसकी आँखें जैसे नींद की दशा में मुँद रही हैं। किसी आकर्षक, पुष्ट युवा व्यक्ति का प्रवेश, जिसके लम्बे खुले केश कन्धे पर हिल रहे हैं। लम्बी काली उभरी हुई आँखें, पतली नाक, मसें भीन रही हैं। वासन्ती के निकट प्रसन्न मुद्रा में खड़ा होकर]

कुमारी....

वासन्ती

(उसकी ओर देखकर बनावटी हँसी के साथ) कहिये महाकवि ! अपने काव्य में आप मेरे इस मयूर को अमर न कर देंगे ? कवि कालिदास के साथ ही यह भी जीवित रहता ।

कालिदास

सो तो मैं कर चुका हूँ राजकुमारी...! मेघदूत में... कदाचित् भूल रही हैं आप वह वर्णन... मयूर की संगति तो मेघ के साथ ही कवियों को दिखाई पड़ती है इस दहकती धूप में···सूर्य और मोर का लगाव कहिए तो अब कहीं पैदा करूँ । किन्तु वह कवि प्रसिद्धि न होगी । और मेरे न रहने पर मेरे अनुभव पर ही लोग शंका करेंगे ।

वासन्ती

किन्तु आप तो अब मनुष्य को......क्यों ?

कालिदास

(मुस्करा कर) किन्तु वह इसलिए कि अब तक मनुष्य को देवता बनाने की चेष्टा रही है...आदि कवि ने भी तो यही किया और इधर बौद्ध विहारों में तो जिधर देखिये देव ही देव दिखाई पड़ने लगे...तीन वर्ष तक मैं भी देवता रहा ।

वासन्ती

आप तो अभी भी देवता हैं...अक्षय कीर्ति, सिद्धि और प्रेम के उपासक...आप देवता कब न रहेंगे ?

कालिदास

कभी नहीं देवत्व का अहंकार सब के लिए शुभ भी

नहीं है। मैं तो अब देवता को मनुष्य बना रहा हूँ। मनुष्य से बढ़कर देवता होता भी नहीं। मनुष्य क्या देवता भी कहीं हो तो इस सुख के लिए तरसने लगे जो आप इस मयूर को दे रही हैं।

वासन्ती

मैं विवश हूँ...मुझे छोड़कर यह जी नहीं सकेगा...कहा आपने आचार्य से...(साँस रोक कर उनकी ओर देखती है।)

कालिदास

प्रखर किरणें हैं इस सूर्य की आज...चलिए...चलिए प्रासाद में तब...

वासन्ती

जी नहीं इसका निर्णय आज बस इसी धूप में हो जाना चाहिए। सेनापति आपको पुत्र की तरह मानते हैं...अभी आप चाहें...

कालिदास

राजकुमारी सेनापति आपको भी पुत्री से कम नहीं समझते...कदाचित आप नहीं जानतीं आपके सो जाने पर आपका यत्न भी आपके पास सो गया होता है (मयूर की ओर संकेत करते हैं) किसी न किसी को और कभी कभी तो स्वयं जाकर आहट लेते हैं कि अभी आपको नींद आई या नहीं... जिस किसी रात देर तक आपको नींद नहीं आती...वे बेचैन हो जाते हैं.....कभी कभी तो रो पड़ते हैं।

वासन्ती

क्या कहते हैं आप?

कालिदास

देवव्रत भीष्म की कोटि के ब्रह्मचारी जिन्होंने गृह कलह को शान्त करने के लिए विवाह किया ही नहीं...जो जानते ही नहीं रमणी का आकर्षण क्या वस्तु है सन्तान की कल्पना भी जिन्हें नहीं हुई, वे आपके लिए रो पड़ते हैं।

वासन्ती

अच्छा तो आचार्य ने विवाह किया ही नहीं....

कालिदास

नहीं....

वासन्ती

कैसी कलह के कारण....?

कालिदास

जी...स्वर्गीय सेनापति आचार्य पुष्यमित्र ने गरुडध्वज की छाया में जिस धर्म, समाज और राजनीति का प्रचार किया वह उन्हीं के वंशजों में आगे चलकर बिगड़ने लगी। अब तक तो वह रसातल को चली गई होती यदि सेनापति विक्रममित्र ने अविवाहित रहने का व्रत न लिया होता।

वासन्ती

ओह! तब तो उनके जीवन की बहुतेरी बातें मैं जानती नहीं और आज मैं तुली बैठी हूँ उनसे अच्छी तरह जी खोल कर पूछ लेने को...

कालिदास

तब तो यह उतावली होगी। आपके बारे में कोई भी निर्णय वे अवन्ती के उद्धार के बाद ही कर सकेंगे। उन्होंने मुझ से बार बार यही कहा है कि अवन्ती का उद्धार होता और

वे तब आप दोनों कुमारियों की व्यवस्था करते।

वासन्ती

हूँ...सेनापति मेरी व्यवस्था करेंगे प्रकृति का कर्म जो कुछ भी हो वही करेंगे। बौद्धों ने प्रकृति का अधिकार छीन लिया था। और अब आप लोग भी वही कर रहे हैं। क्यों महाकवि! प्रकृति भी कुछ करेगी या सब कुछ आप ही लोग कर लेंगे।

कालिदास

हम लोग कुछ नहीं करते राजकुमारी! यह अनादि प्रकृति अपना काम सदैव से ही दूसरों से कराती आई है। इसके सेवकों में कभी चन्द्रगुप्त और कौटिल्य थे कभी प्रियदर्शन अशोक, नृशंस वृहद्रथ और आचार्य पुष्यमित्र थे। आज वे हैं, मैं हूँ आप हैं...हमें जन्म देकर प्रकृति अपना ही काम करती जा रही है। इसमें हम लोगों का कुछ नहीं है। किन्तु यह मैं क्या देख रहा हूँ आज...

वासन्ती

क्या है...

कालिदास

अभी कदाचित आप रोती रही हैं। आँखों के नीचे दो रेखायें...

वासन्ती

जाने दीजिए। विकार के बढ़ जाने पर तो यही होता है। समझ में नहीं आता अब क्या करूँ। आचार्य के बारे में आपने ऐसी बात कह दी कि उनसे कुछ भी कहने का साहस नहीं होता।

कालिदास

जी हाँ...यह प्रासाद आचार्य के प्रपितामह सेनापति अग्निमित्र ने बनवाया था। उनकी दो रानियाँ थीं। पहली पत्नी धारिणी देवी के पुत्र कुमार वसुमित्र हुए, जिन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में ही सिन्धु तट पर, महा पराक्रमी यवनों को पराजित कर; सिन्धु के उस पार तक खदेड़ा था। वे स्वामिकातिक के अवतार कहे जाते थे। मैं जो इन दिनों 'कुमार सम्भव' की रचना कर रहा हूँ उसकी प्रेरणा तो मुझे कुमार वसुमित्र के पराक्रम से ही मिली है।

वासन्ती

तब क्या हुआ...?

कालिदास

दूसरी रानी इरावती के पुत्र वसुज्येष्ठ थे जिनके शस्त्रों को न तो कभी धरती ने देखा था और न कभी आकाश ने...जो वनैले जीवों के भय से कभी वन के रास्ते रक्षकों के साथ भी नहीं जाते थे। किन्तु सेनापति अग्निमित्र, देवी इरावती के मोह में राज्य पर पहले उन्हीं को बैठा गये?

वासन्ती

ऐसे कायर को...

कालिदास

यही तो नारी का मोह शरीर छूने के पहले विवेक को ही छू लेता है। पितृभक्त वसुमित्र ने इस अनाचार को सिर झुका कर उठा लिया। वसुज्येष्ठ के बाद उन्हें शासन भार मिला था। इन दोनों सौतेले भाइयों की सन्तान भी इसी क्रम से अधिकार पाती रही।

वासन्ती

किस तरह महाकवि ! पिता के बाद पुत्र नहीं...एक चचेरे भाई के बाद दूसरा चचेरा भाई...

कालिदास

हाँ...वसुज्येष्ठ के बाद विजयी कुमार वसुमित्र फिर वसु ज्येष्ठ का पुत्र अन्ध्रक और तब आर्य वसुमित्र के पुत्र पुलिन्द। यही सेनापति पुलिन्द आचार्य विक्रममित्र के पिता थे। स्वर्गीय पिता जब आचार्य के गोलोक वासी हुए तो राज्य भार प्रथा के अनुसार अन्ध्रक के पुत्र घोष को मिला। देवी इरावती के रक्त का दोष जैसा कि बराबर चला आया, यह घोष भी श्रीहीन और लम्पट था। युद्ध के नाम से ही इसका परिधान ढीला हो जाता था। मन्त्रिपरिषद् और प्रजा ने जब एक स्वर से उसका विरोध किया तब आचार्य विक्रममित्र ने उसके दस वर्ष के बालक भागवत को सिंहासन पर बैठाकर सात वर्ष तक उसके नाम पर राज्य भार सम्हाला।

वासन्ती

यह क्यों ? घोष के बाद तो इन्हीं का अधिकार होना चाहिए था ?

कालिदास

चाहिए तो था किन्तु...उन्होंने इस चार पीढ़ी से चलते हुए विमाता द्रोह को मिटा देने के लिए शान्तनु पुत्र देवव्रत की तरह आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया। भागवत को इन्होंने स्वयं अथर्ववेद की पूरी शिक्षा देकर उसे धनुर्धर बनाया और इस तरह देवी इरावती के वंशजों की कायरता मिटाकर, सेनापति पुष्यमित्र के गौरव का अधिकारी एक मात्र देवी इरावती की

सन्तान को बनाकर, विजयी वसुमित्र की वीरगर्भा माता धारिणी का नाम ही मिटा दिया।

वासन्ती

और यह देवभूति...

कालिदास

यह देवभूति उन्हीं भागवत का पुत्र है जिन्हें आचार्य ने पुत्र की तरह शिक्षा देकर इतना योग्य तो बना ही दिया कि वे बत्तीस वर्ष तक निर्विघ्न शासन चलाते रहे। किन्तु यह देवभूति ठीक अपने पूर्वजों के अनुरूप है। उसकी अवस्था भी इतनी हुई किन्तु अभी तक उसकी कोई भी सन्तान नहीं....भविष्य में तो अब...

वासन्ती

महाकवि! आचार्य ने यह ठीक किया?

कालिदास

यह प्रश्न उनसे पूछेगा कौन? इस समय वे सत्तासी वर्ष पार कर रहे हैं तब भी उनकी आँखों की ओर देखने का साहस नहीं होता।

वासन्ती

कहिए तो मैं पूछ देखूँ....

कालिदास

ऐं!...आप..क्या कहती हैं..आप वाचाल नहीं कही जायेंगी? मर्यादा की मेखला खोली नहीं जाती राजकुमारी! (मन्दिर की ओर देखकर) अरे! आचार्य आ रहे हैं। राजकुमारी मलयवती क्या कह रही हैं कि वे सिर हिला-हिलाकर अस्वीकार कर रहे हैं।

(मलयवती के साथ सेनापति विक्रममित्र का प्रवेश। श्वेत लम्बे केश कन्धों पर फैल रहे हैं। दाढ़ी के लम्बे श्वेत बाल छाती पर छितरा कर कण्ठ और छाती को छिपा रहे हैं। सिंह की तरह चमकीली आँखें चक्र की तरह रह रहकर घूम जाती हैं। दायें हाथ में सोने का गरुडध्वज और बायें हाथ में कृष्ण मृग चर्म है)

विक्रममित्र

बेटी ! वृद्ध हुआ मैं अब........यह पीला पत्ता किसी दिन डाल से छूट ही जायेगा। माँगती ही है तो मेरा प्राण माँग ले किन्तु जो विधान है उसे नहीं तोड़ूँगा। विक्रममित्र पक्षपात और नियमभंग का दोष अपनी कन्या के प्रेम में पड़कर भी नहीं ले सकता। (वासन्ती के निकट पहुँचकर) कालिदास ! इस कन्या में प्रकृति का विवेक नहीं है तो तुममें तो है। आश्विन की यह भीषण धूप और यह यहाँ बैठी है। यह मयूर कदाचित् इसका प्राण लेकर ही रहेगा। रात को भी इसी के साथ सोता है मैंने एक रात इसे पिंजड़े में रखना चाहा तो इसकी बोली से आकाश फटने लगा और यह कुमारी भी रोने लगी। मनुष्य और पक्षी का यह प्रेम भी क्या है (गरुडध्वज हिलाकर) उठती है कि नहीं अभी....ले जा इस मोर को भी सारा दिन और सारी रात इसे अपने कक्ष में ही रहने दे।

वासन्ती

(उठकर खड़ी होती है) मैं आज आपसे ..

विक्रममित्र

क्या....

वासन्ती

(धरती की ओर देखकर) मुझे आप जाने दें...

मलयवती

हाय ! हाय ! रुक जाओ अभी बहन ! पुष्कर के प्राण के लिए कृत्या न बनो...

वासन्ती

मुझे किसी के प्राण की चिन्ता नहीं करनी है। मेरे भीतर भी तो प्राण है....वह कब तक इस तरह छटपटाता रहेगा !

विक्रममित्र

कालिदास इन दोनों कुमारियों को प्रासाद में ले जाओ। मेरा चित्त किसी भावी आशंका से अनस्थिर हो रहा है। मृत्यु के किनारे पहुँचकर मैंने इन कुमारियों से सन्तान तुष्टि की कामना जो की...जो कहीं किसी से नहीं हारता अपनी ही सन्तान से हार जाता है।

[विक्रममित्र के पीछे सभी सिंहद्वार की ओर चलते हैं]

मलयवती

आपने मुझे वचन दिया था कि आप मेरी एक कामना अवश्य पूरी कर देंगे। आज वही वाक्‌दान मैं माँगती हूँ।

विक्रममित्र

(सिंहद्वार पर पहुँचकर जहाँ कई मृगचर्म पड़े हैं) इसीलिए तो कह रहा हूँ मेरा प्राण माँग ले, यह मेरा है, किन्तु स्वर्गीय पूज्य पाद पुष्यमित्र ने इस वंश के लिए जो प्रतिज्ञा की वह नहीं टूट सकती। उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं। पुष्कर जानता था, उसने गरुडध्वज की शपथ ली थी कि कभी मुझे या मेरे वंश का राजा वाचक शब्द से सम्बोधित नहीं करेगा।

कालिदास

आचार्य ! किन्तु उसने आपको सम्बोधित तो नहीं किया।

समवयस्कों के परिहास में उससे भूल हो गई किन्तु इसे सम्बोधन तो नहीं कहेंगे (लोमश को संकेत कर जो सिंहद्वार से अलग खड़ा है ।) यही लोमश आज की इस घटना का कारण है।

विक्रममित्र

क्या किया इसने...

कालिदास

उसके शरीर की ओर ध्यान से देखिये...

विक्रममित्र

कोई विशेष बात तो नहीं दिखलाई पड़ती...क्या है ?

कालिदास

उसका अभी ही विवाह हुआ है...उसके शरीर पर हल्दी का रंग चढ़ा है ।

विक्रममित्र

तब वह यहाँ क्यों है। दाम्पत्य मर्यादा में कभी बाधक नहीं हो सकता मैं...लोकतन्त्र का यही आधार है। आँखों की ज्योति अब कम पड़ गई ।

कालिदास

यही तो बात थी। इसके साथ परिहास में ही पुष्कर ने कह दिया कि यक्ष के लिए कुबेर का अनुशासन था और तुम्हारे लिए...उसने महाराज शब्द के साथ आपका नाम ले लिया ।

विक्रममित्र

बेटी मलयवती !...उसे प्राणदण्ड या देश निष्कासन नहीं दिया जा सकता किन्तु असावधानी का साधारण दण्ड तो उसे होगा ही जो केवल इस अगले युद्ध में उसकी वीरता से ही छूट

सकेगा और वासन्ती बेटी...जाओ तुम भी आज मैं विचार करूँगा तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ (वासन्ती कुछ कहना चाहती है) नहीं नहीं...तुम दोनों इस समय प्रासाद में जाओ तुम जो कहोगी करूँगा भी तुम्हें भी वचन देता हूँ।

(मलयवती और वासन्ती का प्रस्थान। साथ ही मोर भी चला जाता है। सिंह द्वार के दूसरी ओर जनरव...)

कालिदास

ऐं कैसा कोलाहल हो रहा है यह....(उधर की ओर कान लगाते हैं)

विक्रममित्र

लोमश! देखो तो क्या है? आज सन्ध्या को तुम चले जाओ अपने घर....सन्तान ही समाज का आधार है और जब तक तुम्हें सन्तान न हो जाय यहाँ न आना।

[तीन व्यक्तियों का प्रवेश। जिन में दो अधिक तेजस्वी हैं.... तीसरा अनुचर है जो पीछे चल रहा है।]

कालिदास

ऐं...महामंत्री वासुदेव!

विक्रममित्र

मन्त्री! कुशल तो है...मुझे तो कोई सूचना नहीं थी।

वासुदेव

आपके प्रताप से अब तक तो कुशल थी। किन्तु अब...

विक्रममित्र

क्या साकेत पर भी क्षत्रपों का कोई उपद्रव है। नहीं उधर का मार्ग तो यही है।

वासुदेव

(दूसरे व्यक्ति की ओर संकेत कर) ये साकेत के यवन श्रेष्ठी...

श्रेष्ठी

(पृथ्वी पर सिर रख कर) त्राहि...त्राहि ! सेनापति !

विक्रममित्र

कौन हो तुम भद्र ! तुम पर क्या संकट है ?

वासुदेव

शोक के साथ कहना पड़ रहा है सेनापति ! इस यवन श्रेष्ठी अमोघ की कन्या कुमारी कौमुदी का अपहरण विवाह-मण्डप से कुमार सेनानी देवभूति ने कर लिया है। पन्द्रह दिन बीत रहे हैं उनका कहीं पता भी नहीं है कि वे उस कन्या के साथ कहाँ हैं ?

विक्रममित्र

(बायें हाथ से ललाट ठोक कर) बस हो गया... वासुदेव ! मुझे इधर कई दिनों से अनिष्ट की आशङ्का हो रही थी। सम्भवतः इसमें उस बौद्ध श्रमण का हाथ हो....किन्तु पूज्यपाद स्वर्गीय पुष्यमित्र की मर्यादा तो अब मिट गई...गुप्तचर से तुमने काम नहीं लिये।

वासुदेव

सुनने में आ रहा है वे इस समय काशिराज के यहाँ उस कन्या के साथ हैं।

विक्रममित्र

श्रेष्ठी यवन ! तुम यहाँ अतिथिशाला में ठहरो। मन्त्रिपरिषद, प्रजा और तुम्हारी राय से इस अपराध का निर्णय होगा।

तुम जिस दण्ड से सन्तुष्ट होगे उसे वही दण्ड दूँगा। वासुदेव !

वासुदेव

आचार्य...

विक्रममित्र

(कुछ सोचते हुए) अवन्ती के युद्ध के लिए मैं बराबर सैनिक भेजता रहा हूँ। कुमार विषमशील और उनकी माता सौम्यदर्शना को मैं वचन दे चुका हूँ कि उस युद्ध में मैं स्वयं लड़ूँगा। आज ही संध्या के समय मुझे प्रस्थान भी करना था, किन्तु इस कुल-कलंक के निर्णय के बाद ही मैं अब वहाँ जा सकूँगा। इन यवन श्रेष्ठी की कन्या के अपहरण में तो उसने ठीक यवन जन्मा-सा आचरण किया है, जो मूर्धाभिषिक्त नहीं होते।

वासुदेव

अब मुझे क्या आज्ञा है सेनापति।

विक्रममित्र

तुम साकेत की सेना के साथ काशी पर आक्रमण करो दक्षिण से मैं भी सेना भेजकर घेरा डालूँगा। काशिराज के साथ देवभूति और उस कन्या को यहाँ उपस्थित करो। कालिदास !

कालिदास

आज्ञा हो आचार्य !

विक्रममित्र

अथर्ववेद के पारंगत तुम हो चुके हो। युद्ध में जाओगे ?

कालिदास

नहीं तो आपसे शस्त्र का अध्ययन किया क्यों।

विक्रममित्र

पुष्कर के साथ इस विदिशा आकर के सभी राजबन्दियों को मुक्तकर ले जाओ और दक्षिण की ओर से काशिराज पर आक्रमण करो। सन्देश देने पर यदि वह देवमूति और उस कन्या के साथ यहाँ आने का वचन दें... तो रक्तपात की आवश्यकता नहीं है। क्या बैठे हो वासुदेव ? तीव्रतर रथ पर बैठकर साकेत से सेना लेकर पश्चिम और उत्तर से काशी पर आ पड़ो (क्रोध में काँपते हैं)

अमोघ

जाने दें सेनापति ! मुझे सन्तोष हो गया। (भय की मुद्रा में देखता है)

विक्रममित्र

क्या हम भी यवन आचरण करें... सम्भव नहीं।

(पर्दा गिरता है)

दूसरा अंक

[स्थान। विदिशा के प्रासाद का भीतरी कक्ष। यह विशाल कक्ष सुरुचि और नीति के साथ सजा है दीवारों पर बड़े बड़े बाघम्बर, देव चित्र, प्राचीन धनुष, तरकस वीणा और मृदङ्ग टँगे हैं। फर्श पर सुरंग बिछावन पड़े हैं जिनकी किनारे की झालर मोती और अन्य रत्नों की बनी है चारों दिशाओं में इस कमरे के द्वार जो बहुत उँचे और प्रशस्त हैं, सुन्दर लकड़ी और हाथी दाँत के संयोग से बने हैं। उपर की छत में चन्द्रमा के चारों ओर तारे चित्रित हैं। सप्तर्षि मण्डल और ध्रुव में मानव आकृतियाँ कला-पूर्ण और अवस्था भेद के साथ बैठाई गई हैं। कक्ष के पश्चिम भाग में पूरी चौड़ाई लेकर प्राय: एक हाथ उँचा मंच है जिसकी उँचाई का रंगीन स्फटिक दिखाई पड़ता हैं। शेष मंच भी बिछावन से ढँका है। मंच पर बीच में सोने के दो सिंह बनाकर उनके आधार पर रत्न जटित सिंहासन है। यह सिंहासन पीछे की ओर कई मोड़ लेकर क्रमशः उँचा होता गया है और अन्त में आगे मुड़कर रत्न जटित छत्र के आकार में परिणत हो गया है। छत्र के उपर सोने और रत्नों का बना गरुडध्वज पूर्व की ओर सीधा है। मंच पर सिंहासन के दोनों ओर उत्तर और दक्षिण विभिन्न प्रकार के रत्न जटित आसन पड़े हैं दक्षिण की ओर दीवार के किनारे स्वर्ण पट्टी पर लिखा है "अतिथि देव" और उत्तर की ओर उसी तरह चाँदी की पट्टी पर लिखा है "मन्त्रिपरिषद"। कक्ष का मुख्य

द्वार सिंहासन के ठीक सामने पूर्व की ओर है। द्वार से लेकर मंच के नीचे तक लाल रेशमी वस्त्र पड़ा है जो रास्ते का काम मंच तक पहुँचाने में देता है। इस प्रकार इस कक्ष के चार भाग हो रहे हैं—दो मंच के नीचे और दो मंच के उपर। सिंहासन की बाईं ओर कक्ष के सारे द्वार खुले हैं और बाहर की ओर राज उद्यान के वृक्ष, लताएँ विभिन्न फूलों के गुल्म दिखाई पड़ते हैं। सिंहासन के पश्चिम दीवार में केवल एक द्वार है जो अन्य सभी द्वारों से अधिक सुन्दर हाथी दाँत और स्वर्ण-रत्नों की चमक से दीप्त हो रहा है। अन्तःपुर की ओर जाने का यह रास्ता है जिधर से किसी के संगीत की ध्वनि आ रही है। वीणा की ध्वनि के साथ ही साथ किसी कोमल कंठ की रागिनी भी रह रहकर गूँज उठती है।]

सिंहासन के निकट उत्तर की ओर नीचे ही मृगचर्म डालकर सेनापति विक्रममित्र बैठे हैं। उनके ललाट पर गम्भीर चिन्ता की रेखायें पड़ गई हैं। उनके आगे मंच के नीचे एक ओर हटकर एक व्यक्ति सैनिक वेश में सशस्त्र खड़ा है।]

विक्रममित्र

(उसकी ओर ध्यान से देखकर) हूँ...तो...इस राजदूत के यहाँ आने का प्रयोजन...बोलो भी मान्धाता! जानते हो तुम (दोनों हाथों में पीला वस्त्र फैलाकर) मैं यहाँ युद्ध भूमि का चित्र खोले बैठा हूँ। संकट की अवस्था में मुझे इस सिंहासन के भीतर से पितामह वसुमित्र का आदेश मिलता है। राजदूत की मर्यादा के भाव से मैंने उस संकेत पर तुम्हें यहाँ आने दिया। नहीं तो सर्प की फूत्कार भी मुझे आकर्षित नहीं करती।

मान्धाता

तक्षशिला के यवन सम्राट् अन्तिलकि का राजदूत हलोदर

आनन्द विभोर होकर अतिथि-शाला में नाच रहा है, गा रहा है। पादार्घ्य उसी तरह पड़ा है उसने जल तक नहीं स्वीकार किया। बारबार यही कह रहा है कि जब तक उसे आपके दर्शन नहीं मिलते उसे भूख प्यास नहीं लगेगी।

विक्रममित्र

तुमने कुछ भी पूछा! उसके सम्राट् की क्या कामना है?

मान्धाता

हम सब लोग हार गये। कुछ भी पूछने पर हँसने लगता है।

विक्रममित्र

तो उसकी चेष्टायें मधप-सी हैं। द्राक्षारस अधिक पी गया होगा।

मान्धाता

ऐसा तो नहीं है। न तो उसकी आँखें लाल हैं और न उसके मुख से वैसी गन्ध आ रही है। उसकी आकृति शान्त है चेष्टायें संयत हैं।

विक्रममित्र

तब...

मान्धाता

आज्ञा हो तो कह दूँ सेनापति इस समय नहीं मिलेंगे।

विक्रममित्र

यह तो राजनीति के विरुद्ध होगा। राजदूत का अपमान नहीं होना चाहिए।

मान्धाता

जैसी आज्ञा हो...

विक्रममित्र

कह दो मेरे आग्रह से स्नान भर कर लें.....स्नान कर भीगे शरीर और भीगे केश भी वे आयेंगे तो भी मैं उनका सहर्ष स्वागत करूँगा। तुम तो जानते हो इस भवन में बिना स्नान किये कोई नहीं आ पाता। ये यवन नियमित स्नान नहीं करते।

मान्धाता

जो आज्ञा...(बिना घूमे ही पीछे की ओर चलने लगता है)

विक्रममित्र

क्या नाम है राजदूत का...

मान्धाता

क्या कुछ टेढ़ा नाम है हेल-होलि...अहँ...हलोदर...हलोदर...

विक्रममित्र

(मुस्करा कर) किन्तु परिचय पत्र में तो उसका नाम लिखा है हेलिउदोर...

मान्धाता

बस हलोदर....आचार्य ! मेरी जीभ...उसका वह नाम लेने में जीभ कितने करवट लेगी।

विक्रममित्र

(हँसते हुए) अच्छी बात तुम्हारी जीभ क्यों कष्ट उठायेगी ...हम लोग उसे हलोदर कहेंगे क्यों ठीक न !

मान्धाता

आप उसका नाम ठीक ठीक ले लेंगे...किन्तु मैं तो व्याख्यान के सूत्रों का ठीक उच्चारण न करने के कारण पाठ-

शाले से निकाल दिया गया।

विक्रममित्र

कोई बात नहीं जी मान्धाता...व्याकरण से सूत्र रटकर तुम इस विदिशा के प्रधान रक्षक नहीं बन पाते। अपने इस रूप में तुमने जितना लोक कल्याण किया...तुम्हारा आतंक दस्यु साहसिकों पर यमराज की तरह छा जाता है। सावधान रहना शत्रुओं के गुप्तचर कहीं तुम्हारी नाक के निकट न हों।

मान्धाता

निश्चिन्त रहें आचार्य आप....आपके प्रताप से पक्षी की बोली मैं समझ जाता हूँ...मनुष्य क्या छिपा लेगा?

विक्रममित्र

ठीक है किन्तु निश्चिन्त हो जाने का अर्थ होता है असावधान हो जाना, इसे भी समझ लेना...जाओ। किन्तु नहीं.... यह तो कहो व्याकरण न पढ़ सकने का तुम्हें खेद है क्या?

मान्धाता

क्यों नहीं आचार्य? कालिदास अपना काव्य सुनाते रहते हैं आपकी आँखें कभी चमक जाती हैं कभी मुँद जाती हैं... आपका शरीर रह रह कर रोमांच से गद्-गद् हो उठता है। मैं कहीं कुछ अनुमान से समझ लेता हूँ, शेष तो मुझ से ऐसे छूट जाता है जैसे मैं बिना सींग और पूँछ के पशु हूँ...यही तो मनुष्य योनि में जन्म लेने का पुण्य है काव्य का आनन्द मुझे न मले...शास्त्र हीन मनुष्य भी मनुष्य है?

विक्रममित्र

अरे! भूल रहे हो वत्स! शास्त्र से किसी भी अंश में शास्त्र हीन नहीं है! राष्ट्र की रक्षा कोरे शास्त्र से नहीं हो सकती।

शस्त्र रक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र जन्म लेता है। शास्त्र का जन्म शस्त्र के बहुत पीछे हुआ। कवि कालिदास युद्धों का वर्णन केवल कल्पना से नहीं कर सकते यदि तुम्हारे शस्त्र कौशल का अनुभव उन्हें न होता। शास्त्र और शस्त्र दोनों ही विद्यायें हैं। पराजित जाति में शास्त्र चर्चा सब से नीची कोटि का अज्ञान और विडम्बना है। कालिदास के सामने जब तुम आ जाते हो नहीं देखते तुम्हारे प्रति कितना अधिक सम्मान उसकी आकृति पर छा जाता है।

मान्धाता

(हँसते हुए) मुझे इसकी चिन्ता नहीं है आचार्य ! जब तक मेरे शस्त्र मुझे हीन नहीं कर देते मेरा मन मुझे हीन नहीं करेगा।

विक्रममित्र

चिन्ता तो चिता है। और निश्चय है वह तुम्हारे लिए नहीं है। शास्त्र हीन होना पुरुष के लिए लज्जा की बात नहीं है लज्जा की बात तो है शस्त्र हीन होना। और फिर शस्त्र साधन से कठिन और कौन सी विद्या है ? शस्त्र रक्षित राष्ट्र में ही पतञ्जलि और कालिदास पैदा होते हैं। महाकवि की प्रेरणा महावीर पर ही टिकी रहती है...ऐसे महावीर पर जो लोक रञ्जन और लोक कल्याण कर सके। आततायी जिसके नाम से ही काँप उठें और भद्र ! तुम ऐसे ही हो।

मान्धाता

आचार्य ! यह तुच्छ सेवक उन्मत्त हो उठेगा !

विक्रममित्र

(मुस्करा कर) सेवक भी कभी तुच्छ होता है ? सेवा भाव

के साथ उन्माद नहीं रहता। इन दोनों की जगह तो भिन्न भिन्न लोकों में है (हँसते हुए) जाओ तुम नहीं जानते तुम क्या हो वह मैं जानता हूँ।

(मान्धाता का प्रस्थान। विक्रममित्र उसी क्षण गम्भीर हो उठते हैं। उनकी आँखें झपने लगती हैं। तुरंत ही सिंहासन के आगे धरती पर सिर टेक देते हैं। सिंहासन के पीछे के द्वार से मलयवती का प्रवेश। मलयवती उन्हें इस दशा में देखकर पीछे हटना चाहती है, उसकी आकृति पर भय और विस्मय की रेखा दौड़ जाती है। उसके नूपुर की ध्वनि से विक्रममित्र चौंककर सम्हल बैठते हैं और उसकी ओर देखते हैं। मलयवती भय की मुद्रा में नीचे देखने लगती है।)

विक्रममित्र

कहाँ . चली ?

मलयवती

(अस्फुट स्वर में) मैं...नहीं...जानती थी ?

विक्रममित्र

क्यों काँप रही है ? कोई बात नहीं। तुम मेरे निकट किसी भी स्थान और किसी भी समय आ सकती हो। पूजा के समय मन्दिर में भी और मन्त्रणा के समय परिषद में भी....

मलयवती

आ रही थी....(चुप हो जाती है)

विक्रममित्र

बाघ नहीं हूँ बेटी! मैं। फिर तुम इस तरह क्यों काँप रही हो ?

मलयवती

जानती नहीं थी कि...

विक्रममित्र

क्या...

मलयवती

कि आप इस समय...अभी मुझे नहीं आना चाहिये था।

विक्रममित्र

क्या हो गया तुम्हारे आ जाने में ? मैं कहीं भी कुछ नहीं छिपाता। मेरे साथ जो कुछ लगा है संसार के लिए खुला है। प्रजा और धर्म की रक्षा में मुझे सावधान रहना होता है अन्यथा उससे छूट जाने पर तो साँप के बिल पर मैं निश्चिन्त सो रहूँगा होनी भी कभी टली है ? क्या चाहती हो कहो ?

मलयवती

वासन्ती सखी देर से रो रही है।

विक्रममित्र

और यह गीत मैं किसका सुनता रहा हूँ ! अभी भी (कान लगाकर) अभी तक उसी की ध्वनि आ रही है।

मलयवती

मैं तो उन्हें देखकर अधीर हो रही हूँ। गीत के साथ ही वह रो भी रही हैं। मुझे धोका देने के लिए कभी हँस भी पड़ती हैं किन्तु मुझे तो...

विक्रममित्र

तुम्हें धोखा देने के लिए...क्या अर्थ...

मलयवती

कदाचित् वे आत्म-हत्या करना चाहती हैं...नदी में डूबकर या मिल जाय तो फिर विष खाकर...

विक्रममित्र

(हँसते हुए) और इसी आशंका में तू स्वयं रो पड़ना चाहती है यही न...

मलयवती

(विस्मय की मुद्रा में) आप तो हँस रहे हैं।

विक्रममित्र

इसलिए कि मेरी व्यवस्था में आत्म-हत्या का अवसर किसी को नहीं मिल सकता। प्रस्तुत क्षण को ही जीवन का सब कुछ मान कर क्षपणकों ने आत्म-हत्या को जितनी सरल बना दिया था, अब वह उतनी सरल नहीं है।

मलयवती

किन्तु यदि कोई वह कर ही डाले तो आप क्या...

विक्रममित्र

मैं क्या करूँगा? यह पूछ रही है? तुझे इसका आज आभास मिला है, मैं कई दिन पहले ही यह जान गया। उस दिन रात को, कालिदास पार्वती की तपस्या का वह स्थल सुना रहे थे, वह दो बार निस्संकोच हँस पड़ी, मैंने समझ लिया वह अपने को...हम सब को, धोका दे रही है किन्तु वह धोका दे न सकेगी। मैंने उसके हर क्षण के आचरण पर पहरा बैठा दिया है। विष का मिलना तो असम्भव है...नदी की ओर वह जब कभी जायेगी उसके पोछे मेरे रक्षक सब समय मिलेंगे।

मलयवती

अच्छा...इसीलिए हम लोग....जब उद्यान या नदी की ओर जाती हैं दो सैनिक कहीं न कहीं से निकल आते हैं। (कुछ सोचती हुई) और उसी दिन से ऐसा हो भी रहा है।

विक्रममित्र

मुझे सन्देह हो गया बेटी! फिर तब उसकी व्यवस्था में क्या देर लगती? (बाईं ओर के द्वार से उद्यान की ओर देखकर) वह देखो अपने उस मोर...अरे नहीं कालिदास तो उस मोर को उसका यक्ष कहता है।

मलयवती

(उधर देखती हुई) क्या...

विक्रममित्र

वासन्ती है अपने उस यक्ष के साथ खेलती हुई उद्यान में जारही है। बुलाना तो उसे यहाँ...और यह भी देखना वहाँ भी उसकी रक्षा के लिए कोई प्रस्तुत है या नहीं।

(मलयवती का प्रस्थान। उद्यान की ओर से ध्वनि आती है)

उधर नहीं राजकुमारी! उस लताकुञ्ज में अभी....अभी ....दो क्षण पहले की बात है। रुक जाइये....आगे न बढ़िये।

वासन्ती

क्या है दो क्षण पहले! जहाँ कहीं जा रही हूँ सब ओर मुझे आदेश देने वाले निकल आते हैं....इस जीने से तो मरजाना अच्छा, जहाँ पग-पग पर प्रतिबन्ध है। मान्धाता! सच कहो तुम लोगों को मुझे इसी तरह सर्वत्र अपमानित करने की आज्ञा मिली है?

मान्धाता

मान्धाता रक्षक है राजकुमारी... इस विदिशा नगरी का। इस महानगरी में जो सबसे दरिद्र है...सबसे निर्बल है, उसके चरण भी मेरे सिर हैं फिर आप तो राजकुमारी हैं। आपके अपमान की शक्ति तो वायु में नहीं है...इस सूर्य में नहीं है। मेरा साहस यह क्या होगा ?

वासन्ती

तब इस उद्यान में तुम मुझे चित्त बहलाने नहीं दे रहे हो क्यों ?

मान्धाता

इस लताकुञ्ज में विषधर सर्प घुसा है। आप दूर रहिए !

वासन्ती

(हँसती हुई) ओह केवल सर्प ! तब तो मेरे इस मंत्र का भोजन मिल गया ! तुमको मेरी रक्षा की क्या...

मान्धाता

पशु और पक्षी की रक्षा में मनुष्य विश्वास नहीं करता।

वासन्ती

तुम चले जाओ यहाँ से...एकान्त चाहती हूँ...

मान्धाता

सो तो ठीक है....किन्तु अभी इसी रास्ते यवन राजदूत हलोदर आ रहे हैं। सर्प का भय आपको नहीं है...किन्तु विदेशी राजदूत के साथ और भी लोग होंगे आप इस समय यहाँ से चली जायँ। ये विदेशी आचरण और चेष्टा के लोलुप होते हैं।

वासन्ती

क्या कह रहे हो भद्र ! इस सृष्टि में जितने गुण हैं सब तुम्हारी जाति में हैं और जितने दुर्गुण हैं सब यवनों में हैं यही न ! आचार्य ने जातीय श्रेष्ठता के मन्त्र से तुम सबको……… अन्तर्वेद के एक एक नरनारी को मुग्ध कर रखा है।

मलयवती

सखी ! आचार्य तुम्हें देखना चाहते हैं।

वासन्ती

हे ईश्वर ! मुझ पर अभी कुछ और कृपा करेंगे क्या ?

[विक्रममित्र प्रसन्न मुद्रा में उद्यान की ओर देखते हैं। मलयवती के साथ वासन्ती का प्रवेश]

मलयवती

आ गईं…

वासन्ती

(आगे बढ़कर मंच के नीचे दोनों हाथ जोड़कर खड़ी होती हुई) क्या आज्ञा है सेनापति !

विक्रममित्र

(जैसे उद्वेग में) तुम भी मुझे सेनापति कह रही हो ?

वासन्ती

मैं ही नहीं….यह सारा अन्तर्वेद….इसके सभी नर नारी …साकल और तक्षशिला के यवन…मध्यमिका के शिवि कर्कोटक और अवन्ती के मालव..सतलज के यौधेय, मथुरा के राजन्य, त्रिगर्त, कुलिन्द, वृष्णि, आर्जुनायन, वैदिक मान्यताओं के ये सभी गण परक राष्ट्र जिन्हें आपके

पूर्वजों ने अन्तर्वेद की चौकसी के लिए खड़ा किया। दक्षिणापथ के सातवाहन, कलिंग के गर्दभिल...और यही क्या जहाँ तक यह पृथ्वी पहुँच पाई है सब कहीं आप सेनापति ही कहे जाते हैं।

विक्रममित्र

राजनीति की भाषा में तो मेरी बेटी पटु हो गई अब केवल लोकनीत की भाषा जान लेने पर मेरा मनोर्थ...

वासन्ती

देखिये। मैं जिस पिता की पुत्री हूँ....उसकी योग्यता इतनी खुल चुकी है...सेमर की रुई सी तार-तार होकर ऐसी उड़ गई है कि किसी भी संयत पुरुष के लिये मुझे बेटी कह देना भी घोर कलंक और अपवाद की बात होगी!

विक्रममित्र

उत्तेजना नहीं...उत्तेजना में विचार मन्द हो जाता है।

वासन्ती

होता होगा। किन्तु उत्तेजना मेरे भीतर है और विचार आप बाहर से दे रहे हैं। मेरे इस शरीर में मेरे पिता का रक्त है...बस यही इतना सत्य न मेरे मिटाये मिटेगा न आपके...

विक्रममित्र

किन्तु इस सत्य में दोष क्या है ?

वासन्ती

क्या कह रहे हैं आप ? जिस व्यक्ति से आप जीवन भर घृणा करते रहे हैं, जिसकी कन्या का आपने अपहरण किया....जिसके विरुद्ध आपने सेना भेजी है और वह सेना भी साहसिक दस्युओं...राजबंदियों की....अपने अपराध के कारण जो लोक में मुँह भी न दिखाते वे ही काशी पर आक्रमण कर रहे हैं....उनका

आचरण वहाँ कैसा होगा....अपनी मुक्ति की कामना में वे कैसे जघन्य कर्म करेंगे...आपने कभी इस पर भी सोचा है ?

विक्रममित्र

(हँसते हुए) राजकुमारी ! मैंने तुम्हारे पिता को कभी भी घृणित नहीं माना। मैं तो उन्हें सदैव आदर की दृष्टि से देखता रहा हूँ।

वासन्ती

हाय ! आप सत्य कह रहे हैं यह सब...

विक्रममित्र

मेरे शब्दों में तुम संदेह कर सकती हो किन्तु, मेरे आचरण किसी दिन तुम्हें भी ठीक लगेंगे।

वासन्ती

तब मेरा अपहरण आपने क्यों किया ? इसमें उनका अपमान नहीं हुआ...अपमान और घृणा की बात इससे भी बड़ी कोई होगी ?

विक्रममित्र

मैंने उनकी सम्मान-रक्षा में तुम्हारा अपहरण किया था। पुरानी बातें तुम नहीं जानती। किसी दिन जान जाओगी तब देखना, जिसके प्रति तुम्हारे मन में इतना रोष है वह विक्रममित्र जातीय गौरव और देश की परम्परा की रक्षा के लिये तुम्हारे अपहरण का कारण बना। तुम्हारे पिता जातीय मर्यादा के विरुद्ध तुम्हें मेनन्द्र के पुत्र को दे रहे थे जिसकी अवस्था उस समय पचास वर्ष की थी। और फिर यदि वह बीस वर्ष का भी होता तब भी, हमारे जातीय गौरव के लिए तो यह घोर ग्लानि की बात थी कि हमारी कन्या यवन उद्धत की भार्या बने।

मलयवती

एँ...पचास वर्ष का था...क्यों सखी !

विक्रममित्र

क्या पूछ रही है ? इसने उसे देखा ही नहीं। जितने दिन वह काशिराज के भवन में रहा...उसने कब क्या किया मैं सब जानता हूँ। इसके पिता मुझसे गुप्त रखना चाहते थे यह सारा आयोजन। उन्होंने यहाँ तक गुप्त रखा कि इसको अपने भवन में उसके सामने कभी नहीं आने दिया और जिस दिन विदा किया उस दिन भी वह एक पहर पहले घोड़े पर आगे निकला और फिर जिस रथ पर यह भेजी गई काशी से...(वासन्ती के मुख की ओर देखने लगते हैं)

वासन्ती

यह सब आप कैसे जान गये ?

विक्रममित्र

तुम्हारे पिता के आजाने पर उनके सामने सब कहूँगा। उन्हें भी ज्ञात हो जायेगा। मैं आततायी नहीं हूँ:..उनके सम्मान में मैं अपना, इस सारे देश का सम्मान समझता हूँ। बौद्ध होने का अर्थ यह नहीं है कि जातीय गौरव विदेशियों के चरणों पर गिरा दिया जाय....इस आर्यावर्त के विचारक और वीर खड़े देखते रहें और हमारी राज्य लक्ष्मी के केश विदेशी काट लें।

वासन्ती

(प्रभावित होकर) आपने उन्हें समझाया क्यों नहीं ?

विक्रममित्र

मैं जानता था इसका फल कुछ नहीं होगा। शाकल के मेनन्द्र और तुम्हारे पिता गुरु भाई थे। दोनों ही का दीक्षागुरु वह क्षपणक

थेर नागसेन था जिसने आर्यावर्त से उखड़ते हुए बौद्ध विधान को फिर से जमाना चाहा था। वैदिक विधान से ही बौद्ध पद्धति चली थी...तथागत हमारे ही भीतर पैदा हुए थे, किन्तु, बाद को तो उनके अनुयायियों का प्रधान काम हो गया विदेशियों को निमन्त्रित कर इस पवित्र भूमि को पद दलित कराना। बृहद्रथ और उसके सहयोगी क्षपणकों ने दत्तमित्र को निमन्त्रित कर साकेत, गोमठ और मध्यमिका का संहार कराया था। अवन्ती का संहार भी जैन कालकाचार्य के कारण नहीं बौद्ध भैरवाचार्य के कारण हुआ है। उसी ने तो कालक को भीलनगर भेजकर इन शक-हूणों को इधर आने का निमन्त्रण और...(उत्तेजना में लाल हो उठते हैं)

मलयवती

(वासन्ती की बाहें पकड़कर) हम चलें!

वासन्ती

तब आचार्य आप मुझे कलंकिनी नहीं मानते ?

विक्रममित्र

कैसी कलंकिनी रे! काशी से बाहर आते ही तेरा रथ वस्त्र से घेर दिया गया। तीन दिन रास्ते में बीते किन्तु तेरा रथ उसके अश्व से सदैव बहुत पीछे रहा, जिसमें किसी को सन्देह न हो और तीसरी संध्या को तो फिर उसे भागना ही पड़ा और तू यहाँ लाई गई। तेरे बारे में कलंक की कल्पना भी अधर्म है और जिस किसी को यह सन्देह होगा उसकी जीभ मैं काट लूँगा।

वासन्ती

आचार्य! (खड़ी-खड़ी काँपने लगती है)

विक्रममित्र

क्या है बेटी !

वासन्ती

(गद् गद् कण्ठ से) मैं अब जीवित रहूँगी ।

विक्रममित्र

मैं यह भी जान गया था कि तू जीना नहीं चाहती । आत्म-हत्या का पातक तेरे मन में आ बैठा है...इसीलिए मैंने तेरे प्रति शंका के भाव से तेरे हर आचरण पर पहरा बैठा दिया था । देखा न प्रासाद के भीतर उद्यान में भी तू स्वतन्त्र नहीं थी वहाँ भी तेरे लिए मान्धाता बैठा था ।

वासन्ती

नदी के किनारे भी तो मुझ पर दो प्रहरी नियुक्त थे ।

विक्रममित्र

क्या करता ? अभी इसी अवस्था में स्वतन्त्र होने की भावना किसी भी कुमारी के लिए शुभ नहीं है । फिर तुम्हारी तो मनःस्थिति ही बिगड़ चुकी थी । इस अवन्ती के युद्ध की चिन्ता मुझे जितनी है उससे भी अधिक, चिन्ता मुझे तुम्हारे आचरण की है ।

वासन्ती

तब भी कलंक से मैं कैसे छूट सकूँगी आचार्य ! किसे विश्वास होगा कि...

विक्रममित्र

गंगा की पवित्रता में कोई विश्वास करने नहीं जाता बेटी ! गंगा के निकट पहुँच जाने पर अनायास, वह विश्वास पता नहीं कहाँ से आ जाता है । उसी तरह तुम्हारे निकट आ जाने पर

विश्वास अनायास आ जायेगा।

वासन्ती

साहस नहीं होता आचार्य ! आप से खुल कर सब कुछ कह देने का।

विक्रममित्र

किन्तु मैं सदैव सरल हूँ...बस सचाई के साथ मुझसे कोई भी कह सकता है...केवल सत्य के प्रति उसके मन में निष्ठा हो, फिर तो वह, यदि मेरे मस्तक पर भी चरण रख दे तो कोई बात नहीं।

वासन्ती

सत्य भी आपके सामने कह देने में साँस रुकने लगती है।

विक्रममित्र

मैं तुम्हें किस तरह विश्वास दिलाऊँ....

वासन्ती

(गम्भीर ध्वनि में) तो मैं निष्कलंक हूँ आप कह रहे हैं वह...

विक्रममित्र

सूर्य की तरह...इस पृथ्वी की तरह...पर्वत और समुद्र की तरह...

वासन्ती

हूँ....तब तो सम्भव है इस पृथ्वी पर कोई ऐसा पुरुष हो जो मुझे पवित्र मान ले और मेरा विश्वास भी करे और जिस किसी दिन उसे पता चल जाय कि मैं किसी यवन के साथ...बस उसी दिन उसके लिए इस सूर्य में, इस पृथ्वी में, इस पर्वत और समुद्र में दरार पड़ जाय ! आचार्य ! (उसकी ओर देखती है)

उसकी आँखों से आँसू निकल रहे हैं और आकृति अंगारे की तरह दहक रही है

विक्रममित्र

अरे ! रह रहकर यह तुझे क्या हो जाता है ? पर नहीं मैं अब स्पष्ट...देखो इधर अभी आज ही यहाँ कई राजकुमार आयेंगे और कुछ ही दिनों में निश्चय है अवन्ती के उद्धार के अवसर पर महाकाल के मन्दिर में तो इस पावन भूमि के सभी राजा, सभी गणमुख्य राजकुमार और सेनापति आयेंगे, तुम उनमें जिस किसी को चाहना चुन लेना। देखना वह तुम्हारा गर्व से वरण करेगा या नहीं...

मलयवती

(वासन्ती को बाहों में पकड़ कर) अब कहो मैं तो कह रही थी यही....

वासन्ती

(रूखे स्वर में) और मुझे वरण कर लेने पर वह मेरे उस इतिहास का वरण नहीं करेगा जिसमें मेरे साथ उस यवन कुमार का सम्बंध है। ऐसा जड़ होगा वह...उसके मन में मेरे प्रति शंका नहीं पैदा होगी ? कम से कम किसी भी ऐसे पुरुष की कामना मुझे तो नहीं है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगी मुझे इतना हीन न करें। मेरे शरीर का कोई वरण कर ले किन्तु मेरे मन का, मेरे विश्वास का वरण करने वाला वह महापुरुष कौन होगा जो स्वेच्छा से आग के साथ विनोद करेगा। अवन्ती के उद्धार से अधिक, बहुत अधिक, संकट का काम है अब मेरा उद्धार...(उसका स्वर भारी हो उठता है)

विक्रममित्र

(गंभीर मुद्रा में कुछ सोचते हुए) शरीर, मन और बुद्धि की शक्ति...महापुरुष वही है....उसे जड़ तुम क्यों कहोगी... और बेटी तुमसे तर्क मैं नहीं करूँगा। इस सृष्टि का सत्य तर्क नहीं कर्म है...सत्य और धर्म दोनों ही का बहाव कर्म की उपत्यका के भीतर ही मिल सकता है। कर्म से भाग कर, दूर हट कर, बौद्ध तार्किक धर्म और सत्य का निरूपण करते थे...कम से कम मुझे उससे बच जाने दो...अवन्ती के उद्धार के लिए हमारे इस महान देश को जितना कर्म करना है, आवश्यक हुआ तो उससे अधिक कर्म यह करेगा तुम्हारे उद्धार के लिए !

वासन्ती

किसी राजकुमार को विवश करेंगे आप मेरे वरण के लिए। उसमें उसके जीवन का भी नाश होगा और मेरे जीवन का भी। और फिर आप के आतंक में मेरी चेतना मारी जा चुकी है आचार्य! नहीं तो, मेरे जीवन का नाश तो अब क्या फिर होगा ?

विक्रममित्र

मनोविकारों से ऊपर उठना है बेटी हमें। तुम अग्नि नहीं हो जो तुम बारबार कह रही हो...तुम गंगा की वह धार हो जो पर्वत में बन्द है। किसी भगीरथ को पर्वत फोड़कर तुम्हें निकालना होगा, फिर तो तुम दग्धमरुभूमि को भी नन्दन बना दोगी। शुभ और मंगल में आस्था रहने दो। तुम्हारा उद्धार मैंने किया था आर्य गौरव के उद्धार के लिए। यदि वह सब मिथ्या नहीं है तब तो तुम्हारा उद्धार ध्रुव है। और तुम्हारे सामने देखना इस आर्यावर्त के सभी राजकुमार नतमस्तक होंगे। अपने इस

गौरव से जिस किसी को भी चाहो गौरवित करना तुम्हारा काम होगा।

उद्यान की ओर बाजे की ध्वनि सुनाई पड़ती है। विक्रममित्र जल्दी से उठकर उधर ही बढ़ते हैं)

मलयवती

अब कहो किसका वरण करोगी ? कौन होगा वह महाभाग जिसके कण्ठ में गौरव की यह माला पड़ेगी ? (उसके ओठ पर अपनी नाक रख देती हैं)

वासन्ती

अच्छी बात तो फिर....

मलयवती

क्या.....

वासन्ती

(मुस्कराकर) कुमार विषमशील...आह ! जब, उनके कण्ठ में मेरी बाहें होंगी और उनके ओठ पर इसी तरह मेरी नाक ...

मलयवती

पीछे हटकर थर-थर काँपने लगती है। उसकी आँखें बरस पड़ना चाहती हैं, ललाट और नाक पर पसीना आ जाता है।) यह भी क्या बहन !

वासन्ती

क्या बात है...क्या हुआ... (सिर हिलाकर) :क्यों सखी ! तुम तो काँप रही हो ?

मलयवती

ओह ! ऐसो डर गई मैं···

वासन्ती

(चारों ओर देखती हुई) कहीं तो कुछ नहीं है जी, न कहीं सिंह है, न सर्प है, कोई सींगवाला हिरण भी नहीं फिर तुम डर कैसे गईं ?

मलयवती

अरे ! रहने दो यह परिहास... तुमने कुछ ऐसा कहा कि जैसे सचमुच उनके ओठ पर तुम्हारी नाक हो...

वासन्ती

हूँ...तो तुम उन्हें केवल अपना ही बना लेना चाहती हो.... दूसरों के लिए भी रास्ता रहने देना बहन...

मलयवती

एक लाख और....लेकिन तुम तो नहीं....

वासन्ती

क्यों तब भी तो मैं तुम्हारी यही सखी वासन्ती रहूँगी और तुम्हारा नाम भी मलयवती होगा ? फिर उस दिन तुम्हीं ने कहा था एक वृक्ष के सहारे कई लतायें खड़ी रह सकती हैं और जिस वन में एक ही पेड़ हो और लतायें कई हों वहाँ क्या होगा ?

मलयवती

ऐसा नहीं बहन ! यह परिहास मुझे नहीं रुचता....

वासन्ती

हूँ....तो तुम्हारा स्वार्थ एकदम आकाश और इस पृथ्वी को भी घेर रहा है। समेटो, समेट लो उसे नहीं तो प्रलय हो जायगी।

मलयवती

क्या कह रही हो झूठ-मूठ यह सब अनर्गल....

वासन्ती

चोरी हो जाने पर धन और बढ़ता है....कहते हैं चोरी हो जाने से कभी कोई निर्धन हुआ हो नहीं...मेरी चोरी हो गई.... अब धन भी तो मेरा ही बढ़ेगा पहले....

मलयवती

अच्छी बात मैं अब जा रही हूँ....कहती रहो जो कुछ मन में आये....

वासन्ती

(ज्यों ही वह आगे बढ़ती है उसकी बाँह पकड़कर) तो तुम्हें भी अब मेरे प्रति सहानुभूति नहीं है और उस दिन कह रही थी मेरे न रहने पर तुम भी न रहोगी।

मलयवती

पता नहीं प्रतिक्षण तुम बदलती रहती हो बहन !

वासन्ती

तुम जानती हो मेरे पिता बौद्ध हैं।

मलयवती

तो...

वासन्ती

बौद्धों में क्षणवाद...हर क्षण वे दूसरे होते जाते हैं फिर (अपनी बाँह पकड़कर) फिर मेरे इस शरीर में वही रक्त तो है दूसरे ही क्षण दूसरा हो जाता है।

मलयवती

(उद्यान की ओर देखती हुई) अरे ! वह कई लोग हैं।

आचार्य उसकी बाँह पकड़े आ रहे हैं। इन यवनों को इतनी हँसी कैसे आती है ? ओहो ! जैसे हँसते हँसते वहीं लोट जायेगा।

वासन्ती

अभी इस देश की धरती ने इन यवनों को नहीं बाँधा। ये उड़ते रहते हैं।

मलयवती

ठीक कह रही हो सखी...

वासन्ती

(उधर देखकर) अरे ! चलो। लेकिन हम लोग द्वार के किनारे ही रहेंगी। देखें यह क्या कहता है। (पिछले द्वार से अन्तःपुर की ओर प्रस्थान। हलोदर की बाहें पकड़े विक्रममित्र का प्रवेश। हलोदर अभी युवक सा है यों उसकी अवस्था प्रायः पचास की है। लम्बे भूरे बाल कन्धे और पीठ पर लहरा रहे हैं। सभा कक्ष में प्रवेश के साथ ही वह विस्मय से सब ओर देखने लगता है। छत की ओर देखते हुए।)

हलोदर

हाः ! हाः हाः हाः यहाँ तो आकाश के सभी ग्रह बन्दी बनाये गए हैं। उसे....

विक्रममित्र

चलो भद्र ! वहाँ मंच पर आसन लेकर...

हलोदर

[हाथ छोड़ कर आगे बढ़ता हुआ मंच के सामने नाचने लगता है।]

विक्रममित्र

राजदूत ! नृत्य सर्वोत्तम कला है।

हलोदर

इसीलिए तो मैं उसका प्रदर्शन यहाँ कर रहा हूँ। हम भागवतों के लिए इससे पवित्र स्थान और कहाँ मिलेगा ? भागवत नृत्य है आचार्य !...यह। इस नृत्य का...हमारे पूर्वजों की सारी विद्या यहीं से तो गई थी।

विक्रममित्र

इस देश में आकर, इस देश के धर्म में दीक्षित होकर, आपके पूर्वजों ने इस देश के ऋण में अपने को बाँध लिया था।

हलोदर

यह तो है ही जिस धरती के अन्न जल से पले व्यक्ति, उसी धरती के धर्म में, जब तक वह अपने को ढाल नहीं लेता तब तक तो वह अत्याचारी है। उसे अधिकार नहीं है उस धरती पर रहने का। हमारे पूर्वज इस देश में आने के साथ ही इस देश के धर्म में ढल गये। जुपिटर और मिनर्वा को तो वे यवन देश में ही छोड़ आये। यहाँ तो श्री विष्णु, महेश्वर, लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती के भक्त होगये। ऐसा नहीं करने पर तो वे इस देश में विश्वास के पात्र कभी होते ही नहीं।

विक्रममित्र

सत्य है तक्षशिला और कापिशी के यवन राजाओं ने तो ऐसा ही किया।

हलोदर

तो आप शाकल के यवनों के कर्म के लिये भी उन्हें दोष नहीं दे सकते। उनसे जो कुछ भी अपराध इस पवित्र भूमि में हुए उसके कारण वे नहीं थे।

विक्रममित्र

ठीक है भद्र ! इसका विरोध मैं किस मुँह से करूँगा।

हलोदर

आपके सनातन भागवत धर्म को उखाड़ फेंकने के लिए ही बौद्ध नागसेन का सारा जीवन ही शाकल में बीता था। मेनन्द्र के पूर्वज दत्तमित्र को साकेत, गोमठ और मध्यमिका पर चढ़ा लाने वाला वही नागसेन था और स्वर्गीय आर्य पुष्यमित्र को तो सभी ज्ञात होगया किस प्रकार मगध नरेश बृहद्रथ भी उस काण्ड का प्रेरक हुआ था। आप जानते हैं तभी से हमारे राजवंश का संघर्ष साकलवालों से बराबर चलता ही रहा है।

विक्रममित्र

यथार्थ है भद्र ! किन्तु आप लोगों ने अवसर दिया भी तो नहीं।

हलोदर

आपकी सहायता से हम शाकल को मिटा सकते थे किन्तु आधे मनुष्य और आधे पिशाच ये हूण या शक जो हमारे तीन ओर फैल गये। यवनों का गृह-युद्ध उनकी बढ़ती का और भी कारण होता। पूर्व और उत्तर से हमें शाकल के यवनों से बचने के लिए सेना भेजनी पड़ी है और दक्षिण मीननगर में जो ये शक जम गये हैं इनका भी भय बढ़ रहा है।

विक्रममित्र

तो क्या शाकल वालों से भी कोई नया संघर्ष फिर पैदा हुआ है ?

हलोदर

(हँसते हुए) मेनन्द्र के पुत्र को जो आपने मरवा डाला।

शाकल के बौद्ध फिर संघर्ष की अग्नि जला रहे हैं।

विक्रममित्र

मैं उसे केवल पकड़ना चाहता था किन्तु युद्ध में सुनते हैं वह अन्त तक लड़ता रहा।

इलोदर

अच्छा रहता आप पकड़ जाने पर उसे (छत की ओर हाथ उठाकर) इन्हीं नक्षत्रों में जड़वा देते। (हँसते हुए) वह कुमारी भी तो यहीं है ?

विक्रममित्र

यहीं है।

इलोदर

नागसेन के शिष्य सब ओर यही कह रहे हैं कि बौद्ध धर्म के प्रति जो आपकी घृणा है, उसी से प्रेरित होकर आपने उसे मरवा डाला। शाकल में इससे बड़ी उत्तेजना फैली है। शाकल के बौद्ध यवन तक्षसिला के भागवत यवनों का संहार चाहते हैं और बौद्धों के बहकाने में वे समझ रहे हैं कि इस प्रकार वे अपने कुमार की मृत्यु का बदला ले लेंगे।

विक्रममित्र

(गम्भीर मुद्रा में) तो कदाचित् आपके नरेश अन्तिलिक ने इसी सूचना के लिए आपको यहाँ....

इलोदर

जी नहीं...बौद्ध धूर्त हो सकते हैं वीर नहीं हो सकते....और आप यह भी विश्वास करें कि जब तक गरुडवाहन चक्रधारी विष्णु हमारे रक्षक हैं। हमको अपने इस विश्वास और आपकी तपस्या का भरोसा है। बौद्ध होने के साथ ही शाकल के यवनों

का तेज धूमिल हो गया। वे तो अब मृत्यु के नाम से भी काँपते हैं।

विक्रममित्र

किन्तु मण्डावार तो अन्त तक लड़ता रहा।

हलोदर

वीर धर्म के लिए नहीं प्राण बचाकर भाग जाने के लिये। कर्तव्य का भाव होता तब तो वह काशिराज की कन्या को छोड़ कर भागता ही क्यों? तब तो वहीं लड़कर मरा होता।

(विक्रममित्र उसका हाथ पकड़कर मंच की ओर बढ़ते हैं। उसके साथ के पाँच अन्य यवन उपहार की वस्तुएँ लेकर उसके पीछे चलते हैं सिंहासन के दायें जो आसन हैं ऊपर सबसे आगे हलोदर बैठता है अन्य यवन बारी-बारी अपने पद के अनुसार बैठते हैं। तीन सशस्त्र प्रहरी मंच के नीचे खड़े रहते हैं। विक्रममित्र सिंहासन के बायें मृगचर्म पर बैठते हैं।)

हलोदर

आचार्य! यह क्या (उठकर) आप नीचे बैठेंगे तो हम लोग (घूमकर अपने साथियों को संकेत करता है सब खड़े होते हैं।)

विक्रममित्र

इस सिंहासन के नीचे बैठना ही मेरा कर्तव्य है आप अतिथि हैं।

हलोदर

हो नहीं सकता आप कहते क्या हैं? हम लोग आसन पर बैठ सकेंगे? जब आप नीचे रहें?

विक्रममित्र

राजदूत! यह सिंहासन मेरे पितामह वसुमित्र का है। उन्होंने शाकल के मेनन्द्र को पराजित कर सिन्धु के उस पार तक विजय किया था। इसी विदिशा से चल कर वे केवल छठे दिन मेनन्द्र की सेना पर टूट पड़े थे। यवन सेना भी दुर्दान्त थी। विजय की सारी आशा छूट चुकी थी। उन्होंने प्रण किया कि वे या तो विजय करेंगे या वहीं युद्ध में ही मर मिटेंगे। कहते हैं सूर्योदय से सूर्यास्त तक उनके धनुष से अग्नि बरसती रही। मेनन्द्र के सात महारथियों का उन्होंने बध किया अन्त में मेनन्द्र भी जब मूर्छित हो गया और यवन सेना शाकल के दुर्ग में भाग गई तब वे पीछे लौटे। पुष्करावती के यवन सम्राट....

हलोदर

जानता हूँ आचार्य! हमारे सम्राट अन्तिओकने पुष्करावती में उनका स्वागत किया था और शैवमन्त्र की दीक्षा भी उन्हीं से ली तभी से हमारी मुद्रा पर नन्दी का चित्र रहने लगा।

विक्रममित्र

यह सिंहासन उसी विजय के उपलक्ष में बना था और यह प्रासाद भी...कहो तो यह सिंहासन मेरी उपासना की वस्तु है या उपभोग की? हमारे कवि मेघरुद्र उसी छः दिन की सेना यात्रा को स्मरणीय बनाने के लिए "कुमार सम्भव" काव्य की रचना कर रहे हैं जिसमें छः दिन की अवस्था के ही कुमार कार्तिकेय तारकासुर बध करेंगे। दानवों से स्वर्ग की रक्षा होगी।

हलोदर

कोई बात नहीं तब हम लोग भी नीचे ही बैठेंगे।

(सब सिंहासन की दाईं ओर नीचे बैठते हैं) मेघरुद्र यह कोई

अन्य व्यक्ति है....या वही....

विक्रममित्र

ओह....वही...कालिदास नाम तो मेरा दिया है। उनका नाम तो है मेघरुद्र....इस नाम के साथ रुद्र-पराक्रम की भावना जो लगी है किन्तु जैसी कोमल वृत्ति उनकी पंक्तियों में मिलती है उसके ही विचार से मैंने उनका नाम कालिदास रख दिया। उनके काव्य शक्ति के प्रेरक हो रहे हैं और शक्ति का अंश ही तो काव्य होता भी है.....फिर कालिदास कह कर मैंने उनका यह नाम सम्भवतः सार्थक कर दिया है।

हलोदर

और अभी मान्धाता से पता लगा आपने उन्हें काशी पर आक्रमण के लिए भेजा है। आँखें मूँद कर, कभी आकाश की ओर, कभी किसी पर्वत की ओर, कभी किसी लताकुञ्ज की ओर देखकर काव्य के मोहक भाव बाँधना और कहाँ यह युद्ध...मैं तो समझ नहीं पाता वह बेचारा युद्ध क्या करेगा।

विक्रममित्र

क्या कह रहे हो भद्र! इस देश में लोकधर्म से मुक्त कोई नहीं हो सकता। यहाँ कवि भी पहले लोकधर्म में रत होते हैं। वाल्मीकि, व्यास, इन सबको कर्म करने पड़े थे। यह तुम्हारे देश में सुना गया है कि तुम्हारे देश के कवियों को लोकाधिकरण का अवसर नहीं मिला था। आचार्य प्लुतो उन्हें स्वप्न द्रष्टा और मोहाच्छन्न समझते थे। उसे....

हलोदर

जी हाँ...उनके विचार में कवि नागरिक अधिकार के योग्य नहीं होते। उनका विश्वास किया नहीं जा सकता। पता नहीं

ये कब क्या कर बैठें। किस समय वे अपनी भावना के लोक में रम जायँ और इस लोक को चिन्ता उन्हें न रहे।

विक्रममित्र

किन्तु हम तो कवि उसे ही कहते हैं जो इस प्रकृति के रहस्य को सब के लिए, सर्वसाधारण के हेतु सुबोध कर देता है। जिसकी वाणी लोक रञ्जन और लोक तृप्ति करती है। जो इस पृथ्वी में उस तरह गड़ा रहता है जैसे वह वासुदेव का वृक्ष गड़ा है। जो भावनाओं में डूब नहीं मरता....जीवन और प्रकृति का सत्य जिसका सहचर होता है। मेघरुद्र वाल्मीकि और व्यास के अनुवर्ती हैं....हमारा देश उनसे अपना प्रेम, अपना कर्तव्य, अपना वैराग्य और अपनी निष्ठा सब कुछ ले रहा है। इस व्यापक प्रकृति में जो कुछ भी प्रेय है, सब मेघरुद्र में है नहीं तो यह भी क्या सम्भव होता कि आज प्रातःकाल जो श्लोक बनाते ये कल ही पाँच योजन तक फैल जाते।

हलोदर

हूँ.....कितनी....

विक्रममित्र

क्या....

हलोदर

पिछली बार मैं जब यहाँ राजा अन्तिलिक की इच्छानुसार गरुडस्तम्भ के निर्माण के लिए आया था...

विक्रममित्र

हाँ....तब ..

हलोदर

वे मेघदूत की रचना कर रहे थे। कुल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में....मैं उनकी यह दशा जिसमें...किसी महान विस्मय में भाव विभोर उनकी आँखें कभी खुलती थीं, कभी बन्द होती थीं.... आकृति पर रक्त का रंग कभी पीला, कभी श्वेत और कभी टहटहा लाल लगता था। मैं तो समझता हूँ काव्य-रचना भी इन्द्रजाल है।

विक्रममित्र

और सबसे आश्चर्य की बात है तो यह है कि जो दस वर्ष की अवस्था में भिक्षु बनाया गया। सिर घुटा कर पीले वस्त्र जिसे दिये गये और भिक्षा-पात्र लेकर विदिशा के द्वार-द्वार जो भिक्षाटन के लिए घूमता रहा...

हलोदर

क्या कह रहे हैं आप....आचार्य....? वह देव दुर्लभ शरीर जिसे देखते रहना ही आँखें चाहती हैं....कम से कम मैं तो उन दिनों उसे देखते रहना ही चाहता था....इस तुष्टि के लिए मैं कितने ही दिन यहाँ सारे राजभोग के रहते भी उपवास कर गया। मैं तो कभी यह भी सोचता था कि कालिदास का वह किशोर शरीर इसी तरह बना रहे उस दिन जैसे था....और वह शरीर.... उन उँगलियों के बीच में लोहे का भिक्षापात्र....

विक्रममित्र

(मुस्कराकर प्रसन्न मुद्रा में) अच्छा तो तुम नहीं जानते भद्र! कि वह प्रपंची बौद्धों द्वारा भिक्षु बनाया गया था....

हलोदर

नहीं तो....एक दम सम्मोहित कर देने वाली वे आँखें...मैं तो समझता था वे आपही के वंश के हैं। पहले तो मुझे विश्वास था कि वे आपके पुत्र हैं। किन्तु फिर...जब...

विमक्रमित्र

(गम्भीर होकर) क्या....

हलोदर

मुझे बहुत पीछे पता चला कि आप बाल ब्रह्मचारी हैं...तो वे आपके वंश के भी नहीं है ?

विक्रममित्र

नहीं ..

हलोदर

ऐं....

विक्रममित्र

इतने विस्मय में क्यों पड़ रहे हो...

हलोदर

आचार्य ! क्षमा करें। आप रहस्य हैं...इस सृष्टि में आप से बढ़कर रहस्य की कल्पना भी मैं नहीं कर सकता।

विक्रममित्र

(असमञ्जस के स्वर में) तुम मेरे आत्मीय हो चुके हो अब .. पूरे एक युग पहले यहाँ गरुडस्तम्भ की स्थापना के लिए तुम आये थे। तुम्हारा यह स्तम्भ भारतीय संस्कृति में यवन सम्राट अन्तिलिक की निष्ठा का प्रमाण बनकर चिरकाल तक स्थिर रहेगा। उस एक कृति ने तुम्हारे और तुम्हारे सम्राट का स्थान मेरे मन में इस जाति और परम्परा में सदैव के लिए बना

दिया। अब तो तुम मेरे बन्धु हो और फिर वह बन्धु भी क्या जो बन्धुत्व को रहस्य न बना डाले।

हलोदर

बस इतने ही से नहीं आचार्य। धर्म और राजनीति में हम तक्षशिला के यवन आपके सहचर बन गये। इसी में हमें अपना और इस पुण्यभूमि का, जिसे हमने अपनी और अपनी सन्तान की जन्मभूमि बना लिया था कल्याण मिला। विदेशी बनकर किसी भी देश में पड़ा रहना तो बर्बरता है। अपने वन और अपनी नदी का लगाव तो पशु में भी रहता है। फिर मनुष्य कितना अकृतज्ञ होगा यदि वह उस भूमि और प्रकृति में न ढल जाय जिस पर उसका जीवन टिका है।

विक्रममित्र

इसे तो हम सब मानते हैं कि आप हमारे देश के धर्म और विधान को मानकर अब हमारे लिए स्वदेशी हैं, विदेशी नहीं।

हलोदर

तब फिर आत्मीय हो जाने पर रहस्य की क्या बात? आप जहाँ तक धर्म और राजनीति की बात है सब ओर से सरल और सुबोध हैं।

विक्रममित्र

तुम्ही तो रहस्य बना रहे हो भद्र...

हलोदर

आप रहस्य तो हैं ही... कालिदास आपके वंशज नहीं हैं किन्तु उन दिनों जब आप उनके लम्बे केश अपने हाथों से इधर-उधर हिलाया करते थे...जैसे आप उन बालों से अपना सारा स्नेह, सारा वात्सल्य कसकर बाँध देते थे। आपकी आँख

में वही मोह छा जाता था जो पुत्र के प्रति पिता की आँखों में छा जाता है।

विक्रममित्र

और जिसमें पिता अन्धा हो जाता है। अपने एक पुत्र के सुख के लिए संसार के शतशः पुत्रों के नाश का कारण बनता है। वैसा ही मोह न भद्र !

हलोदर

नहीं ! नहीं यह नहीं कहता आचार्य में···कालिदास के प्रति आपका प्रेम उन दिनों अपने ही रक्त से बने पुत्र की तरह था। (सोचता हुआ) भूल हुई···क्षमा करें आचार्य···आपकी आँखों में तो मुझे सब किसी के लिए उसी तरह का प्रेम मिलता था। अपने लिए भी···

विक्रममित्र

(हँसते हुए) पुत्र की शक्ति कैसी होती है, उसका आकर्षण कितना प्रबल होता है, इसका अनुभव मुझे तो हुआ भी नहीं··· किन्तु प्रकृति का यह अभाव ऐसा नहीं है जो सरलता से छूट जाय। इसका मोह उन दिनों मेरे भीतर बढ़ गया था· इसे न मानकर तो मैं असत्य की आड़ लूँगा जिसमें मेरी रक्षा हो नहीं सकती। इस देश का कोई भी बालक उन दिनों मुझे पुत्र की तरह अपनी ओर खींचता था। (गहरी साँस लेकर चुप हो जाते हैं)

हलोदर

(विनय के स्वर में) फिर यह किशोर कवि आपको मिला कहाँ···इसके जन्म कुल और स्थान··

विक्रममित्र

इसी विदिशा में वह भिक्षाटन करता था। संध्या तक उधर पहाड़ियों में जो विहार हैं, उनमें चला जाता था। सन्ध्या हो रही थी, मैं नदी की ओर नित्य की भाँति घूमते हुए जा रहा था। केवट ने कर्कश स्वर में कहा····"रात हो रही है बालक! चलेगा या नहीं। जब से खड़ा है तीन खेवा नाव आई-गई और वहीं खड़ा-खड़ा आकाश में आँख गड़ाये है। जन्म लेते ही माँग मुड़ाकर सब भिक्खु बन जाते हैं· सभी निर्वाण ले लेंगे तो इस धरती पर कौन रहेगा।"

इलोदर

(विस्मय में) तब····क्या हुआ···

विक्रममित्र

मैं कुछ पग पर खड़ा हो गया। केवट की कोई भी बात उसके कान में नहीं पड़ी···पार के सभी बटोही नाव पर बैठ गये। नाव खुल गई तब मैं उसके पास····

इलोदर

मेरी तो साँस रुक रही है···

विक्रममित्र

मुझे तो विश्वास हो गया यह कोई भावी महापुरुष··· वाल्मीकि या पतंजलि का उत्तराधिकारी····उसके ललाट पर गम्भीर चिन्तन की आभा झलक रही थी। मन्त्रमुग्ध की भाँति मैं उसके निकट खिंच गया। उसके सिर पर मैंने जो हाथ रखा वह इस तरह चौंक पड़ा····यदि मैं पकड़ न लेता तो निश्चय ही गिर पड़ता। उसके हाथ से भिक्षापात्र जो छूटा फिर लुढ़कता हुआ नदी के जल में डूब गया!

हलोदर

आचार्य! तो वही उसका कायाकल्प था!

विक्रममित्र

उसका जन्म काशी और कोशल-खण्ड के संगम पर कहीं सरयू के निकट हुआ था। उस स्थान से कपिलवस्तु कुल आठ योजन दूर पड़ता था। बौद्धों के उस गढ़ में ब्राह्मणों के कुछ ऐसे कुल अभी भी रह गये थे जो बराबर बौद्धों के विरोध में शास्त्रीय वैदिक विधान को चलाते रहे। इतना ही नहीं अपने विधान को अजेय और अडोल रखने के लिये उन्होंने मांसाहार को इतना अधिक बढ़ा दिया कि जिसके घर के पीछे पशुओं की जितनी अधिक हड्डियाँ रहने लगीं वह घर उतना ही कुलीन माना जाने लगा। देख रहे हो, एक विकृति को रोकने के लिये यह दूसरी विकृति....

हलोदर

यही तो प्रतिक्रिया का स्वभाव है।...

विक्रममित्र

किसी विकटबुद्धि नाम के बौद्ध तान्त्रिक ने उस पर सम्मोहन का प्रयोग कर इसे अपने वश में कर लिया। उधर का लोकमत विक्षुब्ध न हो वह उसे यहाँ पटक गया।

हलोदर

किन्तु उधर तो पाटलीपुत्र निकट पड़ता।

विक्रममित्र

किन्तु उधर इसके सम्बन्धी इसे खोज निकालते। यहाँ तक आना तो उनके अनुमान में भी नहीं आता।

हलोदर

अब कहिए''' उस परिवार पर क्या बीती होगी ? उनका मुण्डित केश....भिक्षुओं का यह अत्याचार'''

विक्रममित्र

पता नहीं ऐसे लाखों करोड़ों बालक बहका कर इन विहारों में बन्द कर दिये और राष्ट्र के जो रक्षक होते....युवा होने पर जो शस्त्र से देश और जाति की रक्षा करते, उनके हाथ में धनुष और भल्ल की जगह भिक्षा-पात्र दे दिया गया।

हलोदर

आपके पूर्वजों ने इस पाखण्ड को कुचल कर इस देश के गौरव'''

विक्रममित्र

इसका अहंकार न मेरे पूर्वजों को था, न मुझे है। प्रकृति के साथ अनाचार अधिक दिन नहीं चल सकता। प्रतिहिंसा में प्रकृति सदैव पटु रही है। भला यह तो सोचो'''कुछ विशिष्ट व्यक्ति कठोर तपस्या और साधन से प्रतिक्रिया से बच निकलें, किन्तु क्या यह सब के लिए सम्भव होगा ? जिस अवस्था में मनुष्य का जो स्वभाव है, उसके शरीर-तन्तु और मानसिक विकारों के जो धर्म हैं, प्रकृति ने अपने जिस धर्म के लिए मनुष्य को बनाया है, उससे केवल इच्छा और उसके दिखावे मात्र से मनुष्य छूट जायेगा ?

हलोदर

इसी लिए तो इन बौद्धों के विहार दुराचार के संघ हो रहे हैं। जन्म और मरण से मुक्त होने के लिए वे परिव्रज्या लेते हैं और [हँसने लगता है।]

विक्रममित्र

जिन मनोविकारों के दमन के लिए इन विहारों का निर्माण हुआ था, उनमें मनोविकारों की तृप्ति के लिए ही वाममार्ग का प्रचार हुआ। मनोविकार मारे नहीं जा सकते...प्रकृति यह होने न देगी...इसीलिए शास्त्रीय विधान में मनोविकार संयत किये जाते हैं...इनके नियम और विधि विधान बनाये गये।

हलोदर

जाने दीजिये आचार्य! यह प्रपञ्च अब नहीं चलेगा। बस कालिदास की और बातें आप...मैं कितना उत्सुक हो रहा हूँ।

विक्रममित्र

(मुस्कराकर) मैं उसे अपने साथ इस प्रासाद में ले आया। उसके स्वाभाविक विकास के लिए जो कुछ भी उपयोगी था, मैंने सब किया। उसके मुण्डित केश जिनकी जड़ में राख लगी थी. मैंने अपने हाथ से...और तुम समझ सकते हो कुल दस वर्ष की अवस्था के बालक का जो पालन करेगा उसके प्रति वात्सल्य तो स्वाभाविक है। जिन स्त्रियों को माता के मर जाने पर नवजात शिशु का पालन करना पड़ता है, उनके स्तन में प्रकृति दूध दे देती है।

हलोदर

इसीलिए...किन्तु आपको इतने झंझट में इसके लिए अवसर कैसे मिला और आप से यह सब हुआ भी कैसे?

विक्रममित्र

हाँ...यह रहस्य है। मैं उसकी ओर इतना द्रवित कैसे हुआ? मैं भी नहीं समझ सका किन्तु मुझे वह सब करना ही पड़ा। पालतू कुत्ते की तरह वह उस विहार की ओर भागना

चाहता था, जैसे उसकी चेतना वहीं धरती में गाड़ दी गई और उसके आकर्षण में वह वहाँ जाना चाहता था। पूरे भर मैंने उसे इस प्रासाद के बाहर जाने नहीं दिया। धीरे-ध उसकी चेतना उसे मिली, फिर वह मुँह से शब्द भी निका लगा और इस सृष्टि के सौन्दर्य की ओर भी उसका आक बढ़ा।

हलोदर

तो वह बोलता भी नहीं था?

विक्रममित्र

एक वर्ष तो उसके मुँह से वाणी निकली ही नहीं हम तो उसे गूंगा समझ बैठे थे।

हलोदर

ओह! इतना कष्ट आपने इस अपरिचित बालक के उठाया।

विक्रममित्र

सम्भव है किसी जन्म का वह परिचित रहा हो। न मैं उसके प्रति इतना आकर्षित कैसे होता? प्रकृति में रहस्य है मित्र! यह सब क्या हम जान लेंगे?

हलोदर

हम नहीं जान सकते...हम अपने ऊपर परमात्मा की सत्ता मान कर परवश जो हो गये हैं, किन्तु इस देश विहार में, हर नगर के हर मोड़ पर, जो नास्तिक बौद्ध हैं, उनकी भुजाओं में जकड़ी भिक्षुणियाँ भी तो सर्व

विक्रममित्र

मनुष्य अपनी स्वतन्त्र बुद्धि और भावना को ही सब कुछ मानकर शीलहीन हो उठेगा भद्र! उग्र अहंकार पहले उसी का दमन करेगा।

हलोदर

उँह, छोड़िये इन अतृप्त उन्मत्तों की बातें....तब फिर आपने मेधरुद्र को कालिदास बनाया।

विक्रममित्र

मैं लज्जा और संकोच से मरने लगता हूँ राजदूत! जब इस युग का सारा श्रेय मुझे दिया जाता है। आत्म-स्तुति से प्रसन्न नास्तिक होते हैं। उसके भीतर जो दैवी अंश था उसी ने उसे कालिदास बना दिया। उसकी शिक्षा और संस्कार में मैं प्रयोजन मात्र बना था। उसका पालन मैंने ठीक उसी तरह किया जैसे वह मेरे वंश का ही नहीं मेरे इसी शरीर का हो।

हलोदर

यही तो मैं कह रहा था।

विक्रममित्र

उसके कारण मुझे अब निस्संतान होने का खेद भी नहीं है! तुम जानते हो मेरे पूर्वज....अवश्य ही उनमें कुछ भौतिक विलास और मानसिक आत्म-गौरव में किसी भी राजा से कम नहीं रहे, किन्तु तब भी वे लोक भावना में तपस्वी सेनापति ही रहे। इस ब्राह्मण कुमार मेधरुद्र को ठीक राजकुमार की तरह विभव और ऐश्वर्य में लपेट कर अपनी परम्परा की कमी को मैंने पूरा कर लिया।

हलोदर

(मुस्करा कर) और कदाचित इसमें आप को पूरा सन्तोष है ।

विक्रममित्र

पूरा सन्तोष भद्र ! 'मेघदूत' और 'कुमार सम्भव' के भी जो नौ सर्ग पूरे हो रहे हैं उनमें...उनमें तपस्या और सौख्य दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं एक दूसरे के कारण हैं। केवल तप जीवन की अस्वीकृति है और केवल भौतिक विलास जीवन का उपहास...एक में रुचि का अभाव है और दूसरे में संयम का। तप और विलास जहाँ एक रस हो उठते हैं वहीं जीवन की तुष्टि मिलती है। उसमें इन बौद्धों की प्रतिक्रिया का भय नहीं है। प्रतिक्रिया के झूले में....इधर-उधर....इससे बड़ा अज्ञान मैं और कुछ मानता नहीं।

हलोदर

किन्तु आपने उन्हें युद्ध के लिए जो भेज दिया....

विक्रममित्र

तो क्या हुआ ? इस प्रकृति ने जिसे पुरुष बना कर भेज दिया, जब तक वह युद्ध में नहीं पड़ा, उसका पुरुष जन्म भी निष्फल है। पुरुष प्रकृति से युद्ध कभी नहीं हटेगा उसके निकल जाने पर तो फिर प्रकृति के स्वभाव में ही उलट-फेर मचेगा और उसका सीधा फल होगा प्रलय ! और फिर (मुस्करा कर) उसने युद्ध कैसा किया यह सुनने पर तो तुम्हें और भी विस्मय होगा ?

तो क्या काशी के युद्ध के समाचार भी आपको मिल गये हैं ?

विक्रममित्र

हाँ....

हलोदर

और आप इतने संयत हैं ?

विक्रममित्र

तो क्या है इसमें ऐसा....

हलोदर

आपके मन्त्री और पोष्य पुत्र एक ओर, और आपके वंशज सेनापति कुमार देवभूति दूसरी ओर....दोनों ही ओर अमंगल की आशंका और आप समुद्र की भाँति स्थिर, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

विक्रममित्र

सीधे मनुष्य की बोली में कहो भद्र ! काव्य के शब्द जिनमें भावना इतनी भर जाय, सब जगह ठीक नहीं पड़ते। दोनों ही ओर मेरे प्रिय जन हैं किन्तु उन सब से प्रिय तो वह लोक नीति है जिसमें हमारे पूर्वज....हम सब...

हलोदर

रहने दीजिए...सिद्धान्त और आदर्श....क्या हुआ सब युद्ध में...

विक्रममित्र

कालिदास ने युद्ध की एक विस्मयजनक पद्धति निकाल दी। काशिराज का भवन गंगा में जहाँ वरुणा का संगम है उसके ठीक सामने गङ्गा पार कुछ ही दूर पर है। कालिदास ने साकेत की सेना को गङ्गा पार होने ही नहीं दिया और उनके साथ विदिशा आकर के जो राजबन्दी सैनिक बनाकर भेजे गये थे

उन्हें भी एक योजन पीछे छोड़ कर केवल एक सैनिक पुष्कर को साथ लेकर काशिराज के भवन में निर्भय चले गये।

इलोदर

एं....और यह बन्दियों की सेना क्यों....

विक्रममित्र

यहाँ की सारी सेना तो अवन्ती के उद्धार के लिए पहले ही जा चुकी थी...ऐसे आपद्-काल में मुझे यही युक्ति सूझ पड़ी कि विदिशा-आकर के पाँच सहस्र राजबन्दी जो शरीर से स्वस्थ और सैनिक बनने के योग्य हों, भेज दिये जायँ। और फिर ये बन्दी साहसिक तो होते हैं....इनके भीतर मुक्ति और अभ्युदय की निष्ठा पैदा कर देने पर तो ये...इनका एक गुल्म पूरी अक्षौहिणी का काम दे सकता है। बस इन्हें विश्वास हो जाय कि ये लोक में फिर से मर्यादा पा सकेंगे।

इलोदर

तब क्या हुआ....

विक्रममित्र

(हँसते हुए) काशिराज को सूचना भेजकर कि उनकी कन्या वासन्ती के बारे में परामर्श के लिए वे उनके पास आये हैं, निर्भय उनके दुर्ग में केवल एक सैनिक के साथ प्रवेश कर गये। देश के गौरव और उसकी रक्षा का वह चित्र उन्होंने वहाँ खींच दिया कि परिषद् के बड़े से बड़े मन्त्री और विकट बौद्ध तार्किक उनका मुँह देखते रह गये। आत्मबल कभी-कभी सेनाओं पर ही क्या, हिंस्र जीवों पर भी विजय पा जाता है। अपनी पुत्री के प्रेम में काशिराज उनके साथ आ रहे हैं.... देवभूति भी उस प्रभाव से नहीं बच सका वह भी उन्हीं के साथ

है और वह यवन कन्या कौमुदी भी।

हलोदर

धन्य... धन्य आचार्य ! यह सब आपके पुण्य का फल है !

विक्रममित्र

हाँ....हाँ....अरे भाई इतने असंयत क्यों... किस बात के लिए यह सब साधुवाद.....मेरा पुण्य सचमुच इतना महान् होता तो फिर, अवन्ती की यह दुर्दशा क्यों होती ? अवन्ती का पतन क्या मेरे पाप का परिणाम नहीं है ? यवनों के आक्रमण से जब मालव और शिविगण मूल स्थान के निकट नहीं ठहर सके और मगध की केन्द्रीय मौर्य शक्ति ने भी अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया, तब उन्हें सिन्धु के दक्षिण मध्यमिका और कर्कोटक में शरण लेनी पड़ी। मेघवाहन खारवलि और पितामह वसुमित्र ने सेना-साधन से उनकी सहायता कर उन्हें उन्हीं स्थानों में स्थिर किया और आगे बढ़कर यवनों को सिन्धु के उस पार शाकल तक पहुँचा दिया।

हलोदर

जी हाँ... वह पूर्ववृत्त तो मैं जानता ही हूँ।

विक्रममित्र

इन मालव .ी सनातन वैदिक विधान में जो आस्था थी, उसने पितामह वसुमित्र को तो प्रभावित किया ही, जैन खारवलि तो उससे इतना प्रभावित हुआ कि उसने मालव महेन्द्रादित्य के साथ अपनी पुत्री सौम्यदर्शना का विवाह कर दिया। कर्कोटक में आठ वर्ष रहकर मालव दम्पति अवन्ती में आये थे। हमारे

पूर्वजों के राज्य विस्तार का आग्रह तो कभी रहा नहीं। हम तो योग्य गण-मुख्यों और मण्डलीकों पर शासन का भार छोड़ कर अपना क्षेत्र संकुचित करते गये। सनातनधर्म और शास्त्र विधान चलता रहे, इसीलिए हम कभी भी सीमा विस्तार के मोह में न पड़कर अधिकाधिक शक्तियों को अपने सहयोग में खड़े करते रहे।

हलोदर

ऐसा न होता यदि तो फिर आपके पूर्वजों का साथ जैन खारबलि न दे पाते।

विक्रममित्र

अवन्ती तो मैंने ही स्वेच्छा से छोड़कर महेन्द्रादित्य को वहाँ प्रतिष्ठित किया था....मेरे ही हाथ का लगाया वृक्ष टूट गया इसमें क्या मेरा पाप नहीं है ?

हलोदर

टूट नहीं गया है आचार्य ! आँधी के कारण झुक गया है कुछ ही दिनों में सीधा भी हो जायगा।

विक्रममित्र

भगवान वासुदेव और महाकाल शङ्कर वह दिन भी दिखावें। मित्र ! मेरे इस जीवन की अभिलाषा पूरी हो। गरुड़ध्वज की छाया में सारा अन्तर्वेद, मध्यदेश और उत्तरा पथ शान्ति, सुख और सन्तोष की साँस ले...कर्म ओज की वाणी कालिदास के काव्य से निकलती रहे...और फिर एक ही नहीं और भी कालिदास जन्म लें।

हलोदर

क्या कहूँ आचार्य....आप तो आतंक से दबा देते हैं। मन

जहाँ आपके चरणों की ओर झुकना चाहता है आप दूर से ही रोक देते हैं, नहीं तो क्या आप इस युग के इस देश के प्राण नहीं है ? हिमालय और समुद्र भी क्या इतने महान हैं....इतने गौरव पूर्ण हैं....जितने ....

विक्रममित्र

सावधान ! भागवत हलोदर...

हलोदर

यही तो आप ...

विक्रममित्र

किसी भी महानता का श्रेय व्यक्ति को न देना भद्र ! वह सब तो भगवान का है जिसे जो रूप, जो प्रेरणा वे दे सकें। मनुष्य अपनी स्वपन्त्र इच्छा का फल नहीं है। नहीं तो फिर हमें भागवतों और इन क्षपणकों में कोई अन्तर न रहेगा। अरे तुम यहाँ केवल स्नान कर चले आये। इस संसार का सारा गौरव और सारी महानता बस आहार पर ही चलती है और अब इस समय दिन ढल रहा है। (अन्य व्यक्तियों की ओर देख कर जो हलोदर के साथ हैं) इन मित्रों को साथ लेकर आहार और विश्राम के लिए अतिथि शाला में जाओ....

हलोदर

सम्राट अन्तिलिक के उपहार तो अभी स्वीकृत नहीं हुए। मण्डावर को मिटा कर आपने अनाचार का पर्वत गिरा दिया हमारे सम्राट आपके प्रति अपनी निष्ठा और मैत्री के प्रमाण के लिये ....

विक्रममित्र

सम्राट अन्तिलिक को मैं अपना बन्धु मानता हूँ। इस देश

के धर्म और संस्कृति को स्वीकार कर उन्होंने मुझे, इस देश के प्रति मनस्वी और इस पूरे देश को अपने प्रेम में बाँध लिया है। हम उनके इस बन्धन से कभी भी मुक्त न हो सकेंगे। उपहार की पद्धति निर्वाह तो उनका शील है। (सिंहासन की ओर हाथ उठाकर) मेरी शक्ति भक्ति जो कुछ भद्र ! मेरे इस जीवन, इस शरीर का है सब पितामह वसुमित्र के इस पूज्य आसन की देन है। उपहार और कीर्ति का अधिकार मुझे कहाँ....

हलोदर

[उपहार की वस्तुयें अपने साथियों से लेकर सिंहासन के सामने नीचे रखता है। अन्त में शुद्ध सोने का गरुडस्तम्भ जो कुल हाथ भर ऊँचा है, जिसमें यथास्थान बहुमूल्य रत्न जड़े हैं हाथ में लेता है]

आचार्य ! यह गरुडस्तम्भ सम्राट ने अपने सामने ही तक्षशिला के प्रसिद्ध शिल्पी मणिबन्ध से बनवा कर इस सिंहासन के अग्र भाग में स्थापित करने के लिये भेजा है। क्या आज्ञा है ?

विक्रममित्र

यह तो विचार ही महान है और फिर इस विचार का इतना सुन्दर मूर्त रूप, यह स्तम्भ जिस पर मनुष्य की आँखें ठहर न सकें, अब क्या कहा जाय....सम्राट के इस प्रेम के लिए हम कृतज्ञ रहेंगे।

हलोदर

पुष्करावती और तक्षशिला में अपनी तक्षण कला के लिये प्रसिद्ध (अपने बायें वाले व्यक्ति के कन्धे पर हाथ रख कर) शिल्पी शीलभद्र को आपकी सेवा के लिए सम्राट ने भेजा है।

अहो भाग्य ! जड़ पत्थर में प्राण फूकने वाले शीलभद्र यही हैं ? जिनकी कीर्ति अब तक सुनता रहा उन्हें इन आँखों से देख रहा हूँ ?

हलोदर

और ये चारों व्यक्ति इनके शिष्य हैं। सम्राट की प्रार्थना है कि आप इन्हें, हमारे सम्राट के कोष से सौ गरुडस्तम्भ बनाने की आज्ञा दें। प्रस्तर का चुनाव ये स्वयं करेंगे। दक्षिण विन्ध्य में खड़े पर्वत के भीतर अपनी रुचि के अनुकूल ये स्तम्भ बनायेंगे और जब स्तम्भ वहीं बनकर पूरा हो जायेगा तो वह पर्वत से छूट जायेगा।

विक्रममित्र

(विस्मय के स्वर में) निर्माण में ही मनुष्य अमर है।

शीलभद्र

महत्व के विस्मय में, मनुष्य जब अभिभूत हो जाता है वह निर्माण करता है। और इस युग के महत्व से आप छूट नहीं सकते।

विक्रममित्र

खड़े पर्वत से गरुडस्तम्भ छूट जायेगा और मुझे मित्र तुम इस युग से न छूटने दोगे !

शीलभद्र

जब हम लोग न रहेंगे आचार्य... केवल हमारा निर्माण रहेगा उस समय...

हलोदर

(हँसते हुए) गरूडस्तम्भ दक्षिण-विन्ध्य से दूर खड़े रहेंगे

और किसी को पता भी न चलेगा कि किसी दिन ये उसके अंग थे, किन्तु आचार्य ! आप तो केवल इस युग के महत्व में ऐसे मिल जायेंगे कि फिर खोजे भी न मिलेंगे ।

शीलभद्र

मुझ पर भी कोई बौद्ध तान्त्रिक सम्मोहन का प्रयोग कर इसी विदिशा में छोड़ गया होता...मैं भी तब कदाचित .. कालिदास बन जाता...

विक्रममित्र

(मुस्कराकर) निर्माण में भेद का भाव कहाँ रहता है सौम्य ? अवन्ती के उद्धार के बाद तुम दोनों ही निर्माण करोगे । तुम्हारे निर्माण में कालिदास की वाणी बोलेगी और उनके निर्माण में तुम्हारी कला ।

शीलभद्र

धन्य आचार्य ! मेरे हाथ कब तक मनुष्य के भोग्य भवनों में लगे रहे अब वे देवत्व की निष्ठा प्राप्ति में लगेंगे ।

विक्रममित्र

यही तो क्रम है...भोग से तुष्टि और तुष्टि से ही प्राप्ति होती है । सृष्टि अपने इसी स्वभाव में चलती रही है अन्यथा वह कभी ही रुक गई होती ।

(मान्धाता का प्रवेश)

मान्धाता

(हलोदर से) अब आप लोग अतिथिशाला में चलें । आहार का समय निकलता जा रहा है । चलिए आज वहाँ और भी मान्य अतिथि आ गये हैं ।

विक्रममित्र

(उत्सुकता में) कौन ?

मान्धाता

काशिराज, कुमार देवभूति श्रेष्ठी कन्या कौमुदी और....

विक्रममित्र

(उद्वेग में) और कालिदास (स्वर भारी हो उठता है)

मान्धाता

वही तो कह रहा था। वह भी हैं स्वस्थ और सकुशल। मैंने उन लोगों को वहीं रोक लिया नहीं तो यहाँ आने पर तो फिर सन्ध्या हो जाती दिनचर्या की अवहेलना...

विक्रममित्र

साधु...सौम्य! दिनचर्या के नियम अधिक नहीं तोड़े जाते। तो मैं भी चलूँ वहीं...कम से कम काशिराज के सन्तोष के लिए भी यही कर्त्तव्य है।

(सामने के द्वार से विक्रममित्र के साथ सबका प्रस्थान। अन्तःपुर की ओर से वासन्ती का मयूर मंच पर आ जाता है और सिंहासन के सामने मंच से नीचे उतरता है। उसके पीछे ही प्रसन्नमुद्रा में वासन्ती का प्रवेश। वह आगे बढ़कर मयूर को बुलाती है। तुरत ही उद्यान की ओर से कालिदास का प्रवेश। दोनों एक दूसरे को देखते हैं क्षण भर दोनों की आँखें नीचे झुक जाती हैं। कालिदास सैनिक वेश में रत्न जटित सोने का शिरस्त्राण धारण किये हैं। छाती पर कवच, हाथ में धनुष पीठ पर तरकस है।)

कालिदास

आचार्य कहाँ हैं राजकुमारी...

वासन्ती

(उनकी ओर देखने की चेष्टा में) अतिथि शाला में गये हैं।

कालिदास

ऐं...तब तो मैं चरण न छू सका। (घूमकर लौटना चाहते हैं)

वासन्ती

नहीं...नहीं...बस दो शब्द पूछूँगी कवि ! लौट आओ...

कालिदास

(विस्मय में) क्या है राजकुमारी !

वासन्ती

यहाँ आइये। आज मैं कुमार कार्तिकेय का स्वागत करूँगी उनका वाहन मोर भी यहीं है।

कालिदास

क्या...

वासन्ती

स्वागत...इस विजयी वेश का स्वागत करूँगी...स्वागत और पूजा की सारी सामग्री तो यहाँ है नहीं....बस एक फूल की माला आज अपनी वीणा पर रख आई हूँ....जाइयेगा मत अभी आई !

(वेग से भीतर जाती है। कालिदास की भावभंगी से असमंजस व्यक्त होता है। मयूर उनके निकट आकर गर्दन उठाकर उनकी ओर देखता है)

कालिदास

(मयूर के गले हाथ रखकर) क्या है....मेरा वाहन बनोगे

वासन्ती

(प्रवेश कर दोनों हाथों से माला लिए उनके निकट पहुँचती है और काँपते हुए हाथों से माला उनके कण्ठ में डाल देती है)

इस विजय के उपलक्ष में कवि ! आपने ऐसी विजय प्राप्त की जिसका अनुमान भी नहीं हो सकेगा ।

कालिदास

(मुस्करा कर) कैसी विजय राजकुमारी ? मुझे तो शस्त्र उठाने नहीं पड़े । आपके पिता शील और दया के अवतार हैं । उनसे युद्ध मैं करता ?

वासन्ती

(गद्‌गद् कण्ठ से) कवि...!

कालिदास

जी...

वासन्ती

यह उपकार मैं जीवन भर...

कालिदास

उपकार नहीं सेवा...सेवक उपकार के दम्भ में...भला क्या...

वासन्ती

पिता की मृत्यु की सूचना...अब आती है...तब आती है पिछले पाँच दिन...किसी भी रात क्षण भर को भी नींद नहीं आई और वे यहाँ जीवित आगये । ऐसा सेवक...ऐसा सेवक या....स्वामी...

कालिदास

(कण्ठ से माला निकाल कर) इसे आप अपनी वीणा

पर...आचार्य के चरणों पर जब तक...

[उद्यान की ओर से विक्रममित्र का प्रवेश]

विक्रममित्र

मैं यहीं हूँ वत्स ! मेरे चरण भी यहीं हैं। मेरे लिए तुम यहाँ भागे आये और तुम्हारे लिए मैं वहाँ भागा गया। किन्तु वह माला, तुम्हें इस सिंहासन के सामने गरुडध्वज के साक्ष्य में मिली है....तुम्हें धारण करनी पड़ेगी।

[वासन्ती नीचे धरती की ओर देखने लगती है। कालिदास की मुद्रा से विस्मय प्रकट होता है वे आगे बढ़कर विक्रममित्र के चरणों पर सिर रखते हैं। माला छूट कर उनके पैरों पर जा पड़ती है वे झुक कर कालिदास को उठाकर छाती से लगाते हैं। वासन्ती अन्तःपुर की ओर जाना चाहती है]

राजकुमारी !

वासन्ती

(गद् गद् स्वर में) जी....

विक्रममित्र

तुम्हारे पिता अभी यहाँ आ रहे हैं। तुम्हें लेकर काशी जायेंगे।

वासन्ती

(भयभीत सी) आचार्य ! मैं आपके ही पास रहूँगी ! पिता जी मेरी प्रार्थना मान जायेंगे। मैं जानती हूँ वे मेरी बात...

विक्रममित्र

वे तो कालिदास को भी माँग रहे हैं। उनकी कोई भी इच्छा मैं भग्न नहीं करूँगा !

कालिदास

क्या...इस चरण के छूटने पर...इतने बड़े संसार में मेरे लिए कोई दूसरा भी स्थान होगा ? सम्भव नहीं। आचार्य ! आप से छूट जाने पर...इस जीवन से...सरस्वती की साधना से छूट जाऊँगा मैं....

विक्रममित्र

(गम्भीर मुद्रा में) तब.. मैंने उनसे स्वीकार कर लिया है।

कालिदास

...वे भी आपके साथ रहेंगे। आप जहाँ रहें इस विदिशा में...किसी तीर्थ या तपोवन में। काशी अवन्ती के अधीन होगी...और मैं वहाँ कुमार विषमशील का राज कवि....अन्तरंग सखा बन कर रहूँगा।

(पर्दा गिरता है)

तीसरा अङ्क

[स्थान अवन्ती। एक पहर दिन शेष है। महाकाल का मन्दिर तोरण, फूलों और वल्लरियों से सजा है। शंख, घण्ट और मन्त्र की ध्वनि मन्दिर के भीतर सुनाई दे रही है। सुगन्धित हवन धूम चारों ओर फैल रहा है। राजभृत्य राजकीय वेश-भूषा में मन्दिर के भीतर और बाहर हो रहे हैं। मन्दिर के बायें बड़े चौतरे पर सुन्दर बिछावन पड़े हैं। मन्दिर की दाईं ओर की विस्तृत मण्डप में स्त्रियां मंगल गान कर रही हैं। बाईं ओर की विस्तृत भूमि और उद्यान में सीधी रेखा बानते हुए कई पंक्तियों में सुन्दर शिविर पड़े हैं। उनमें भी राजभृत्यों की चहल-पहल है। मन्दिर के चारों कोनों पर, सभी शिविरों पर, और जिस मण्डप में स्त्रियों का मंगल गान हो रहा है उसके ऊपर भी गरुडध्वज फहरा रहे हैं। मन्दिर के चारों ओर आकाश में जैसे पंख फैलाये गरुड़ उड़ रहे हों। दाईं ओर के मण्डप से निकलकर मलयवती और वासन्ती मन्दिर के द्वार पर आती हैं। मन्दिर के भीतर से त्रिपुण्डधारी अधेड़ अवस्था का एक पुजारी उन दोनों के निकट आकर खड़ा होता है।]

पुजारी

क्या आज्ञा है राजकुमार··· !

वासन्ती

राजमाता ने पूछा है कुमार की कोई सूचना मिली ?

पुजारी

कह दीजिये महाकाल की कृपा से संकट टल गया। दस्यु

शक हारकर भाग गये। उनका सेनापति बन्दी कर लिया गया है।

वासन्ती

इस समय तक तो सब को यहाँ आ जाना चाहिए था।

पुजारी

हमसे कहा तो यही गया था कि शत्रुओं को हराकर इस समय तक सब लोग महाकाल के मन्दिर में दर्शन करेंगे।

मलयवती

(भय में) तब यह देर क्यों हो रही है ?

पुजारी

आपके भय के लिए कोई भी कारण नहीं है राजकुमारी! शत्रुओं के चारों ओर जाल डाल दिया गया है। सोचिये तो मलयपुर और प्रतिष्ठान की सेना दक्षिण से, कुमार शातकर्णि और प्रसिद्ध पाण्डय धनुर्धर कार्तिकेश्वर के संचालन में है। पूर्व की ओर से अवन्ती, विदिशा और साकेत तक के माण्डलीक अपनी सेना के साथ हैं।

मलयवती

तो इसी सेना का संचालन कुमार कर रहे हैं आचार्य के साथ...

पुजारी

(हँसते हुए) नहीं तो...कुमार किसी सेना के सेनापति नहीं हैं। आचार्य विक्रममित्र ने उन्हें युद्ध में जाने से रोक दिया। कवि मेघरुद्र और मान्धाता के साथ वे पूर्व और उत्तर की सेनाओं के बीच में बीस सहस्र सैनिकों के साथ युद्ध भूमि से एक योजन की दूरी पर हैं। युद्धचर जैसी सूचना देंगे उसके

अनुसार ही उन्हें अपने सैनिकों से काम लेना होगा।

वासन्ती

तब यह पूर्व की सेना किसके अधिनायकत्व में है ?

पुजारी

स्वयं आचार्य विक्रममित्र के। सरयू के किनारे जो लार मण्डल है वहाँ के माण्डलीक भीमराज उनके साथ हैं। कहते हैं यह भीम पाण्डवों में जो बली भीमसेन थे उन्हीं के अवतार हैं। इनके नाम से ही उधर के लोग थरथरा उठते हैं। मतवाला हाथी उनकी डांट पर घुटने मोड़ लेता है। शकों पर आक्रमण सबसे पहले भीमराज ही करेंगे। दक्षिण और उत्तर की सेनायें दोनों पार्श्व से शत्रुओं पर दबाव डालेंगी।

वासन्ती

तब तो इस युद्ध के सबसे बड़े संचालक वही लार के भीम रहेंगे।

पुजारी

हाँ....वे प्रधान सेनापति हैं। कल सन्ध्या समय यहीं महाकाल के हवन-कुण्ड के भस्म से उनकी प्रतिष्ठा हुई थी। आचार्य विक्रममित्र तो उन्हें भीमसेन कहते ही हैं।

मलयवती

तो कुमार युद्ध में नहीं गये हैं...उन्हें लड़ना नहीं पड़ेगा और कहीं शत्रु उसी ओर घूम पड़े तो...

पुजारी

आचार्य विक्रममित्र इसमें असावधान नहीं है...शत्रु उधर मुड़ने पर तो उत्तर और दक्खिन की सेनाओं में पिस कर चटनी हो जायेंगे ? और फिर भीमराज की मार भी विकट होगी।

वासन्ती

क्या चिन्ता है सखी आचार्य सब कु: ानते हैं। जब तक उनके शरीर में प्राण है कुमार विषमशील और कवि कालिदास का अनिष्ट नहीं हो सकता।

मलयवती

उत्तर की सेना में कौन हैं ?

पुजारी

वहीं तो...महाकाल के ही सामने कल सारी योजना बनी थी। यहीं निश्चय हुआ कि प्रातःकाल हो बस जब शरीर के रोयें दिखाई पड़ने लगें पूर्व की ओर से भीमराज धावा करेंगे। उत्तर की सेना में मध्यमिका, कर्कोटक, यौधेय, राजन्य और वृष्णि की सेनायें हैं। इन गण मुख्यों में भी एक से एक बढ़कर वीर हैं और फिर अवन्ती में ही तो गणपरक विधान का गौरव था। उसे बचाने में तो ये प्राण दे देंगे।

वासन्ती

इस विजय से इस देश के मन्दिर और मन्दिरों के पुजारी...

पुजारी

क्या...है...स्पष्ट कहिए राजकुमारी! कल आपके पिताजी भी इसी मन्दिर में थे...उन्होंने भी महाकाल की आरती की...

वासन्ती

एं...

पुजारी

यह देश महाकाल की कृपा से ही सुखी रह सकता है आप के पिता भी अब शैव हो रहे हैं।

वासन्ती

असत्य है.....

पुजारी

(मुस्करा कर) कवि कालिदास ने उन्हें शैव बनाया है ।

वासन्ती

किस तरह जी...

पुजारी

इसका उत्तर आपको कालिदास देंगे। आपके पिता उन्हें अपना पुत्र बनाना चाहते हैं। वे इस चेष्टा में हैं कि उन्हें काशी ले जायँ आपके लिए... (मुस्कराने लगता है)

वासन्ती

अच्छा यदि यही हो तो शैव वह क्यों होंगे ?

पुजारी

कालिदास शैव हैं...संसार के सारे राज्य के लिए भी वे शिव की उपासना नहीं छोड़ सकते। आपके पिता के पूर्वज भी तो शैव थे...अब वे फिर उसी सनातन उपासना में आ जायेंगे।

मलयवती

अरे ! महादेवी आरही हैं...

पुजारी

ऐं राजमाता...

वासन्ती

(मन्दिर के दाईं ओर देखकर) हाँ वही तो...

पुजारी

(मन्दिर में जाकर विभूति ले आता है सौम्यदर्शना का प्रवेश)

सौम्यदर्शना

(भयभीत सी कठिनाई से साँस लेकर) क्या हुआ बेटी ? है कुछ इन लोगों को पता...हे भगवान ! महाकाल का मन्दिर बुहारूँगी...मेरा लाल कुशल से आ जाय।

पुजारी

(विभूति देते हुए) लीजिये मृत्युञ्जय की विभूति महादेवी ! कुमार युद्ध में नहीं गये हैं।

सौम्यदर्शना

कहाँ कहाँ है बेटा मेरा...मुझे दिखा दो पुजारी जी...दस महीना बीत गया...कालक ने मेरे पति को (रोने लगती है)

पुजारी

कालक को अपवाद लगा। उस अभागे ने विदेशी दस्युओं की सहायता की...भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता महादेवी....

सौम्यदर्शना

महाकाल की शरण में भी भाग्य पर वश नहीं चलता देवता क्या कह रहे हो ?

पुजारी

हाँ राजमाता...रावण शिव का कितना बड़ा भक्त था। शिव के प्रताप से उसके पुत्र ने इन्द्र को भी जीत लिया था... किन्तु जब उसका भाग्य बिगड़ा सोने की लंका जल गई। दुःख के पीछे सुख भी आता है महादेवी ! आपका भाग्य बदल गया। पूरे दस महीने तक अवन्ती में रहकर ये बर्बर अवन्ती से तो निकल गये। भीमराज ने उन्हें यहाँ ऐसा पीटा कि अब यह अन्तिम युद्ध नगर के बाहर है उसमें भी वह उन्हें खदेड़ मारेंगे। और उस दिन तो केवल विदिशा और अवन्ती की सेना थी

आज तो सारा आर्यावर्त एक साथ है। सब ओर से शत्रु घिर गये हैं...पश्चिम से ही भागने के लिए उन्हें थोड़ा मार्ग मिलेगा।

सौम्यदर्शना

अरे ! मैं क्या जानूँ लड़ाई कैसी होती है। कुमार युद्ध में नहीं हैं तो कहाँ हैं।

वासन्ती

वे युद्ध भूमि के पीछे हैं उनके साथ मान्धाता और...

सौम्यदर्शना

और कौन है ?

मलयवती

(मुस्कराकर) कवि कालिदास हैं...बीस सहस्र सेना है। युद्ध में दूसरे लोग हैं। आचार्य ने कुमार की रक्षा के लिए यह सब किया है।

सौम्यदर्शना

आचार्य का ही तो भरोसा है बेटी ! नहीं तो भला अवन्ती में हम लोग कैसे आ पातीं। महाकाल के दर्शन कैसे होते ? (विभूति अपने ललाट और सिर पर लगाती है) हे शङ्कर... इस अभागिनी का उद्धार करो।

मलयवती

चलिये हम लोग चलें यहाँ से वह शिविर से काशिराज आ रहे हैं...

सौम्यदर्शना

कौन . हाँ...हाँ...उन बेटी वासन्ती के पिता...

मलयवती

हाँ... (दोनों का प्रस्थान) पुजारी भी मन्दिर में चला जाता है।

वासन्ती

(थोड़ी देर इधर उधर देखती रहती है फिर बाईं ओर जाना चाहती है। काशिराज का प्रवेश)

काशिराज

बेटी...

वासन्ती

जी आप...आप विश्राम क्यों नहीं करते पिताजी... आपसे साँस लेने में भी...

काशिराज

हाँ बेटी...अभी तो रथ से उतरा हूँ... (वहीं धरती पर बैठकर उसके मुँह की ओर देखने लगते हैं)

वासन्ती

आप स्वस्थ नहीं हैं। आपकी आकृति धूमिल हो उठी है.. (हाथ पकड़कर) चलिये आपको शिविर में ले चलूँ। कहाँ गये थे आप..

काशिराज

युद्ध भूमि की ओर गया था बेटी....थक गया हूँ....

वासन्ती

ऐं...तो क्या आपने युद्ध किया.. ?

काशिराज

युद्ध क्या कर सकूँगा अब....जब उसकी अवस्था थी तब तो मैं भिक्षु-मण्डली में धर्मालाप करता रहा....यों ही....

चित्त नहीं मानता था। इस देश के सभी माण्डलीक और गण मुख्य आज युद्ध में हैं, मैं ही तो ऐसा हूँ जो इस कर्तव्य से वञ्चित हूँ।

वासन्ती

हाय! निष्ठा इस प्रकार नहीं बदली जाती। तथागत की शरण से निकल कर अब आप रक्तपात और हिंसा को कर्तव्य बना रहे हैं।

काशिराज

धर्म और आचरण की बात अपनी कन्या से अब मैं नहीं सीखूँगा। भोमराज की अवस्था भी प्रायः मेरी ही है, किन्तु उस सिंह को तड़प में शत्रु काई की भाँति फट जाते थे। जिधर मुड़ पड़ता था युद्धभूमि में दस्युओं के कबन्ध ही देख पड़ते थे। हिंसा और रक्तपात भी धर्म होता है बेटी कभी-कभी। नहीं तो विदेशी हिंसक जाति का जीवन ही मिटा देते हैं।

वासन्ती

हूँ तो फिर यह आप....अब कह रहे हैं...

काशिराज

अब मेरी आँखें खुली हैं। मातृभूमि के उद्धार के लिए कल वहीं वीरों के संकल्प से मेरी भुजाएँ भी फड़क उठीं। जिनसे आज तक शस्त्र छू भी नहीं गये। प्रियदर्शन अशोक के पीछे उनकी सन्तान ने शस्त्र न छोड़ दिया होता तो इस देश में न तो यवन आपाते और न ये पिशाच शक...किन्तु अब क्या किया जाय? महाकाल की कृपा हुई तो किसी दिन विदेशी इस देश के बाहर ठेल दिये जायेंगे।

वासन्ती

(हँसी दबाकर) पिता जी आपकी बातों से हँसी आ रही है। ऐसी वीरता की बातें आप कर रहे हैं।

काशिराज

बस मैं उसी का पात्र हूँ बेटी ..मैंने अपना कर्तव्य जो नहीं किया और नहीं तो मैं अपनी प्राण से भी ..कन्या को यवन विदेशो को दे रहा था। इसीलिए कि वह भी बौद्ध था और मैं भी...देश की मर्यादा और परम्परा से बढ़कर दूसरा धर्म क्या होगा ?

वासन्ती

यही बात आप पहले समझ पाते...(रोने लगती है)

काशिराज

कल्याणी ..मैं बड़ा अभागा हूँ किन्तु तुम्हारे आँसू इस हृदय को छेद देंगे...हाय ! (मूर्छित हो जाते हैं। वासन्ती बैठकर उनके सिर को उठाकर अपनी छाती का सहारा देती है। कुमार विषमशील, कालिदास और मान्धाता का प्रवेश)

कु० विषमशील

(धनुष, तरकस और भल्ल शीघ्रता से वहीं धरती पर रखकर) क्या हुआ....क्या हुआ...हम लोगों की इस विजय का सबसे बड़ा आनन्द और हर्ष तो यही था कि काशिराज सनातन वैदिक निष्ठा में आ रहे थे। इनके न रहने पर इस विजय का आनन्द मिट जायेगा। कवि ! अभी यहीं मन्दिर के वैद्यराज चक्रपाणि को...(झुककर काशिराज को पकड़ते हुए) राजकुमारी ! उठिये आप...(मान्धाता दौड़कर मन्दिर में जाता है।)

कालिदास

(उसी प्रकार शस्त्रों को धारण किये ही) मैं ..मैं कुमार... उनका रोग भी मैं हूँ और औषधि भी...(वहीं बैठकर काशिराज को सम्हालते हैं वासन्ती सहमी सी नीचे सिर कर नहीं खड़ी हो जाती है।) क्यों रो रही हो राजकुमारी.. देश और जाति के उद्धार की इस शुभ वेला में हमें रोना नहीं है। महाकाल रक्षा करेंगे। निर्बल हैं.. अभी युद्ध भूमि तक गये थे...इनकी आकृति से, आँखों से, अंग अंग से रुद्रतेज निकल रहा था। (मन्दिर की ओर से त्रिपुण्डधारी दो व्यक्तियों का प्रवेश मान्धाता भी उनके साथ है)

पहिला व्यक्ति

(आगे बढ़ कर) भूतभावन महाकालेश्वर की जय . त्रिलोक गौरव गरुडध्वज की जय...आचार्य विक्रममित्र की जय . कुमार विषमशील और महादेवी सौम्यदर्शना की जय।

कुमार विषमशील

क्या कर रहे हैं आर्य आप ? मेरी जय किसलिए। मैं तो युद्ध में गया भी नहीं.. जिन वीरों ने विदेशी दस्युओं का दर्प मिटाया है, उनकी जय बोलिये नहीं तो यह पृथ्वी फट जायेगी, आकाश हिल जायगा। मित्रो ! बोलिये महावीर भीमराज की जय...कुमार स्वाति शातकर्णि की जय.. ब्राह्मणकुमार कालिकेश्वर की जय...(सब एक ही साथ जय-जयकार करते हैं। काशिराज चौंक कर आँखें खोलते हैं और हाँ परम पूजनीय माहात्मा काशिराज की जाय....

काशिराज

(टूटते हुए स्वर में) अरे... किसलिए...किसलिए... यह अभागा जो सदैव इस पुण्यभूमि का कलंक रहा (कालिदास के सहारे उठकर

खड़े होते हैं। मन्दिर की ओर से सोने के पात्र में औषधि लिए वैद्य चक्रपाणि का प्रवेश)

चक्रपाणि

सद्यः प्राणकरी औषधियों का योग है यह...पीने के साथ ही तेज फूट पड़ेगा। (कुमार विषमशील अपने हाथ में पात्र लेकर काशिराज के निकट जाते हैं और सबको चुप रहने का संकेत करते हैं।)

बैठकर...

काशिराज

(सम्हलने की चेष्टा में) अवश्य भद्र ! खड़े खड़े जल पीना तो असभ्यों का...जो शरीर की प्रकृति नहीं जानते ..(कालिदास के सहारे बैठते हैं। कुमार विषमशील पात्र इनके मुँह से लगाते हैं। औषधि पीकर काशिराज कालिदास के कन्धे पर अपना सिर रखकर आँखें मूँद लेते हैं)

कालिदास

मैं उठाकर ले चलूँ अब.....

चक्रपाणि

क्षण भर रुक जाओ कवि ! औषधि का चमत्कार अभी देख लोगे। इस योग से तीन दिन तक मृत्यु टाली जा सकती है। काशिराज को हुआ क्या है ? उत्सव के इस अवसर पर ये रोगशय्या पर डाले जायँ तो फिर आयुर्वेद के आचार्यों की महिमा क्या रहेगी ? यह भी युद्ध में गये थे ?

कुमार विषमशील

हाँ आचार्य ! और केवल गये ही नहीं . इनके न जाने पर तो पता नहीं क्या होता...हम तीनों और हमारे सैनिकों में

पता नहीं कितने यमलोक पहुँच गये होते।

चक्रपाणि

किन्तु आप लोग तो युद्ध में थे नहीं।

कुमार विषमशील

वही तो धोखा हुआ! शत्रुओं की सेना तो हमारे ईशान-कोण पर थी...पूर्व और दक्षिण दोनों ही ओर से हम पूरे व्यूह में थे...उधर से शत्रु बढ़ते तब तो महाबाहु भीमराज और आचार्य का सामना होता ही। थोड़ा....भी दक्खिन घूमने पर हमारे गण-मुख्यों के सैनिक मिल जाते।

चक्रपाणि

तब...यह सङ्कट कहाँ से...

कुमार विषमशील

वही कालकाचार्य के जैन और बौद्ध....हमारे चर मुख्य शत्रु-सेना की सूचना हमें आगे से दे रहे थे...हर परिस्थिति के लिए हम तत्पर थे किन्तु हमें तो स्वप्न में भी इसकी शङ्का नहीं थी कि हमारे ही बन्धु हमारे ही देश के उत्पन्न वीर...वन और पर्वत की आड़ में पीछे की ओर से आक्रमण करेंगे।

चक्रपाणि

(विस्मय में) अच्छा...तब ..

कुमार विषमशील

क्या कहूँ आचार्य! महाकाल की प्रेरणा से परम पूज्य काशिराज अपने रथ पर उधर से निकले...पहले तो ये भ्रम में पड़े किन्तु फिर भिक्खु वेश और वस्त्र कहाँ छिपते? रथ घुमाकर एक योजन का चक्कर लेकर वे आचार्य के निकट पहुँच गये उस समय जब कि आचार्य स्वयं पूरे वेग में वाण चला

रहे थे। भीमराज शत्रुओं के भीतर ऐसे धँस गये थे कि उनके रथ की केवल ध्वजा ही दिखलाई पड़ रही थी। सोच सकते हैं आप उस विकट परिस्थिति को भीमराज को सूचित करने का समय भी नहीं था... महाकाल की कृपा...दक्षिण की ओर से धनुर्धर कार्तिकेश्वर युद्ध करते हुए उधर ही आ निकले और जब उन्हें इस कुचक्र का पता चला वे स्वयं हमारी सहायता के लिए आगे बढ़े...आचार्य ने उनके रथ पर पुष्कर को बैठा दिया और पुष्कर वहाँ दूसरा कुमार बनकर लड़ता रहा।

चक्रपाणि

कुमार कार्तिकेश्वर धनुर्वेद के सिद्ध ? दक्षिणापथ में तो लोग उन्हें कार्तिकेय और परशुराम का अवतार मानते हैं।

कु० विषमशील

किन्तु पुष्कर के लिए भी पता चला कि किसी को सन्देह भी नहीं हो सका कि कार्तिकेश्वर वहाँ नहीं हैं। कुमार शातकर्णि को भी यह भेद प्रकट न हो सका...उस रथ पर पुष्कर धनुष का वही चमत्कार दिखा रहा था।

चक्रपाणि

तब कुमार कार्तिकेश्वर इस संकट के त्राता बने...

कु० विषमशील

महात्मा काशिराज के रथ पर जिस समय वे हमारे पास पहुँचे और उन्होंने कहा कि हमारे पीछे भी शत्रु आक्रमण के लिए पहुँच गये हैं...मुझे तो विश्वास नहीं होता था...

काशिराज

(उत्साह के स्वर में) कुमार! इतना ही नहीं तुम्हें मेरे आचरण पर सन्देह हुआ...तुमने समझा मैं तुम्हें धोखा

दे रहा हूँ।

कु० विषमशील

सत्य कह रहे हैं आप... और मैं अनुभव और बुद्धि दोनों में हीन जो हूँ, मैंने तो यही समझा कि आप कालक और विधर्मी शत्रुओं की सहायता के लिए कार्तिकेश्वर को बहका लाये हैं...

काशिराज

मेरा आचरण ऐसा ही तो बराबर रहा... मैं कब देशद्रोही नहीं रहा? फिर तुम्हारी शङ्का के लिए कारण थे... बौद्धधर्म के नाम पर अपनी जन्म-भूमि और अपनी कन्या भी जो विदेशी को दे सकता है उससे और क्या नहीं सम्भव होगा वत्स!

कु० विषमशील

अधिक लज्जित न करें आर्य?

काशिराज

इस पवित्र शब्द का अधिकारी मैं नहीं हूँ। मैं अपने आचरण में सदैव अनार्य रहा।

मान्धाता

कभी नहीं आप जिस परम्परा में पैदा हुए, वही दूषित थी—आप भी विवश थे। अवसर आने पर तो आप तपे हुए सोने की भाँति दहक उठे। आर्य-भूमि के उद्धार में आपने किससे कम योग दिया। कालिदास के साथ आप की सारी सेना यहाँ आगई... किसलिए... वह सेना भी तो हमारे शत्रुओं से लड़ रही है।

काशिराज

मातृभूमि और जातीय गौरव के प्रति निष्ठा बौद्धों में नहीं होती वत्स ! वे किसी भी संकीर्ण घेरे में रहना नहीं चाहते... इस देश और जाति के जितने भी बन्धन थे, एक एक करके सभी काटते गये वे। विदेशियों के पैरों के नीचे यह पवित्र भूमि जो बार-बार . (आवेश में काँपने लगते हैं)

कालिदास

(मुस्करा कर) आपका चित्त स्थिर नहीं है। इस समय अभी विश्राम...

काशिराज

(झटके से उठकर खड़े होते हैं) क्या कहा ? मेरा चित्त स्थिर तो था किन्तु उस दिन... मेरी सभा में.... जहाँ मेरे पारिषद और प्रधान संघस्थविर सभी बैठे थे। जो तर्क से इस पृथ्वी और आकाश को भी हिलाने वाले थे... जिनके एक-एक आक्षेप पर विष्णु और शंकर के आसन डोल जाते थे उन सब पर तुमने कौनसी मोहिनी डाल दी कि उनकी सभी विद्या लुप्त हो गई ? उसी दिन से... उसी दिन से मेरी स्थिरता मिट गई। लौटा लो अपना मन्त्र .. मुक्त करदो मुझे अपने मोह से फिर मैं उतना ही स्थिर, उतना ही देशद्रोही मैं फिर हो जाता हूँ या नहीं !

कालीदास

(सिर झुका कर) मुझसे अपराध हो गया हो तो फिर आप मुझे दण्ड दें...।

काशिराज

(कुमार विषमशील की ओर संकेत कर) इन्होंने मुझपर मेरे

उद्देश्य पर जो सन्देह किया...तुम लोगों के जिस प्रेम में मेरे बौद्ध दम्भ और अहंकार के सभी शिखर डूब रहे थे...उस समय भी मैं देशद्रोही ही समझा गया...मन हो रहा था तुम्हारा माँस दाँत से काट कर अपने बौध जीवन का जयघोष करूँ...किन्तु... कालकाचार्य ने तुरन्त ही पीछे से आक्रमण कर सारी स्थिति सम्हाल दी।

कु० विषमशील

विश्वासघात से ही अवन्ती का पतन हुआ...पिता का बध सहस्रों कुमारियों का धर्म विनाश...तेरह वर्षों में इस महानगरी का जो भी शृङ्गार हुआ था सब कुछ एक पहर में मिट गया। महात्मन्...आप तो जानते हैं...सुन चुके हैं अवन्ती उसके समीप की सारी भूमि की दुर्दशा...मेरे पास वे शब्द कहाँ हैं कि वह सब कह सकूँ...अग्निदेव कुपित होकर अवन्ति-आकर को भस्म कर दिये होते मैं उनका स्वागत करता...वह विध्वंस भी गौरव का कारण होता...किन्तु इस विध्वंस में कितनी लज्जा...कितनी ग्लानि...मेरी आँखों ने वह सब देखा था...मुझे तो तभी से अपना विश्वास भी नहीं होता। मनुष्य के भीतर कहीं भी कुछ शुभ और मंगल है...आचार्य विक्रममित्र ने मुझे अपने प्रभाव के कवच से घेर कर अब तक ..

काशिराज

समझ रहा हूँ तुम्हारा मनस्ताप मैं...इस देश के विनाश के कारण इसी देश के निवासी हुए...और कौन जाने भविष्य में भी धर्म के दुराग्रह में कितने कालकाचार्य जन्म लेंगे। उसका कुचक्र, उसका देशद्रोह निष्फल हुआ...।मुझे इसी का आनन्द है...

मान्धाता

हमें क्या पता था कि हमारे पीछे बन और पर्वत पर भी शत्रु हैं। कुछ हो कालकाचार्य वीर तो हैं। उसने जिस साहस और रणकौशल से आक्रमण किया...हमारे तीन ओर बिजली की भाँति शत्रु फैल गये...जैसे हमारे व्यूह का पता उसे पहले चल गया था और उसने अपनी रण योजना उसी के अनुकूल बना ली थी।

कालिदास

किन्तु यह रण योजना भी तो अभी कल संध्या समय बनी और बस रात भर में कालक ने यही नहीं कि उसका पता लगा लिया हमारे ध्वंस के साधन भी जुटा लिये....प्रायः तीस सहस्र सैनिक और सब भिक्षु नहीं थे केवल वस्त्र उनके रँग दिये गये थे।

मान्धाता

इतने रथ, गज, अश्व...शस्त्र भी इनके कितने संहारक थे। मेरा अनुमान है इनके भल्ल तो अवश्य विषाक्त थे।

कालिदास

विषाक्त शस्त्रों से भी यदि बौद्ध पद्धति लौट सके। कहाँ देवप्रिय अशोक का शस्त्र त्याग और कहाँ अब विषाक्त शस्त्र...

कुमार विषमशील

कालकाचार्य का प्रभाव इधर कितना है...साधारण जनता उसे अलौकिक पुरुष समझती है...जल वर्षा से लेकर धान्य की उपज तक सब कुछ उसी की कृपा या क्रोध का कारण माना जाता है। इधर के सभी विहार गज, अश्व और सभी प्रकार के वाहन और पशु के लिए प्रसिद्ध हैं। आज की सारी शक्ति जो

कुछ भी हम देख सके...

मान्धाता

पता नहीं कुमार अभी बन में और उधर पहाड़ के पीछे कितने सैनिक थे....

काशिराज

यह कालक जितना विद्वान है उतना ही वीर भी है।

मान्धता

जी हाँ ..कितने कौशल से उसने हमारी सेना को तीन ओर से घेर लिया ..कुमार कार्तिकेश्वर समय पर न पहुँच जाते तो...

कु० विषमशील

तो हम उस देशद्रोही से जूझ मरते...देश तो रहता... इसके उद्धारक दूसरे होते...

कालिदास

किन्तु उद्धारक बार बार नहीं आते कुमार! अवन्ती के उद्धार का यश तो आपको मिल गया...अब सारे उत्तरापथ के उद्धार का यश शेष है।

कु० विषमशील

और उस उद्धार का गौरव तुम्हारी वाणी से निकले जब तक यह देश इसकी मर्यादा रहे...

कालिदास

मेरी यही कामना है कि मैं उसी गौरव में इस तरह लीन हो जाऊं कि मेरे काव्य में मेरा कुछ भी न रहे। इसी गौरव, देश की इसी मर्यादा परम्परा का, जिसमें विदेशी दस्यु सदैव हमारी शक्ति से पराभूत हों....लोक जीवन में प्रेम

हो...सुख हो तुष्टि हो...

काशिराज

यही होगा वत्स !...नहीं तो कालक का षड्यन्त्र निष्फल भी क्यों होता ?

मान्धाता

रथ के टूट जाने पर शस्त्रों से हीन भी वह वहाँ से निकल भागा।

काशिराज

इधर के सभी पथ... गुफायें उसे ज्ञात हैं...किसी भी वृक्ष के कोटर में वह छिप गया होगा। कार्तिकेश्वर के वाणों से उसकी यह मुक्ति सेना भस्म हो गई और मान्धाता! तुम भी तो प्रलय के रुद्र बन गये थे। कालक की प्रत्यंचा तुम्हारे ही वाणों से कटी थी।

मान्धाता

जी नहीं...कालक को तो मैं देख भी नहीं सका...उस समय तो मैं वह...जो भैरवघोष के गजातिकों का धावा हुआ...इन नास्तिकों ने हाथियों को भी मद्य पिला दिया था....मदिरा के प्रभाव से सूँड़ पटकते हुए हाथी जो चिग्घाड़ कर आगे बढ़े और सबके आगे वही भैरवघोष था उसकी आँखें भी मद्य से लाल अंगारे हो रही थीं...

कु० विषमशील

[हँसते हुए चक्रपाणि से] आचार्य! ऐसे ही कोई हाथी मुझे या इन मान्धाता को बीच से चीर दिए होता तो आपकी औषधि काम करती या नहीं...?

चक्रपाणि

काल से भी परिहास कर रहे हो...

कु० विषमशील

परिहास क्यों ? मान्धाता के साथ मुझे अनायास...पता नहीं किस तरह हम दोनों के सामने ही उत्तर की ओर से वन के वृक्षों को उखाड़ते हुए हाथी जहाँ तक हम लोग देख सके....हाथी ही हाथी निकल पड़े...हमारे सामने क्षण भर में अन्धेरी रात हो गई...

मान्धाता

कुमार का पहला बाण भैरवघोष को कण्ठ से ऊपर एक ओर और नीचे दूसरी ओर कर गया...हाथी की सूँड़ मेरे बाण से पृथक जा पड़ी। पहली पंक्ति के कुल पन्द्रह सोलह हाथी अपने आरोहियों के साथ जो गिरे, कि फिर मद्य आवेश में शत्रुओं के सम्हाले न सम्हले और घूम कर वन की ओर भाग चले।

कु० विषमशील

कार्तिकेश्वर दक्खिन से शत्रुओं के रथ और पदातिकों को रोक रहे थे....कालकाचार्य तो पूर्व की ओर से बढ़ रहा था और उसका सामना पड़ा था हमारे कवि मेघरुद्र से। इन्होंने अपना यह नाम वहाँ ठीक अर्थ में चरितार्थ भी किया...जब तक मैं इनकी सहायता को पहुँचूँ कालका का रथ टूट चुका था...घोड़े धरती पर पड़े थे और मेरे पहुँचते ही उसकी प्रत्यंचा भी इन्होंने काट दी। मान्धाता कुमार कार्तिकेश्वर के निकट पहुँचा ही था...

मान्धाता

हे भगवान् उन्होंने मुझे इस तरह तड़प कर...

कालिदास

क्या....

मान्धाता

जैसे आकाश में वज्र कड़क उठा 'यहाँ कहाँ मूर्ख! कुमार की रक्षा....उनके कुछ भी अनिष्ट होने पर हम सबका जीवन निष्फल होगा। हमारी वीरता को, हमारे धनुष को धिक्कार होगा'....फिर मैं वहाँ से जो भागा कि कुमार के दायें रथ लगा कर ही साँस ली....

कुमार विषमशील

इस पुण्य भूमि के इन महावीरों का ऋण मैं कैसे....

कालिदास

इस पुण्य भूमि का ऋण था इन महावीरों पर, वही ऋण तो ये चुका रहे हैं....माता और मातृभूमि दोनों एक ही हैं कुमार....भीमराज और कार्तिकेश्वर आज मातृऋण से उऋण हुए हैं, आप किस मोह में इनका ऋणी बनने जा रहे हैं? ये लोग तो अब उस ऋण से मुक्त हुए। अब तो इन सबका ऋण आपके कन्धों पर आ पड़ा.. मातृभूमि का शेष उद्धार, मीननगर को ध्वंस कर इन क्षत्रपों को भस्म करना तो अब आपके बाणों का काम होगा।

कुमार विषमशील

महाकाल के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ भद्र! तुम्हारे काव्य के लिए, तुम्हारी वाणी के ओज के लिए, मैं इन क्षत्रपों का विध्वंस करूँगा। आचार्य विक्रममित्र का त्याग मेरे इस जीवन का प्रकाश होगा। भीमराज और कार्तिकेश्वर के शस्त्र मेरे निर्देशक होंगे। कुमार शातकर्णि, तुम्हारा और मान्धाता का प्रेम मेरा कवच होगा। जातीय परम्परा के प्रति श्रद्धा और अनुरक्ति जो आज

महात्मा काशिराज को विभूत हो रही है, मेरी भी होगी।

काशिराज

जय....कुमार विषमशील की जय...

[विक्रममित्र, कुमार शातकर्णि, भीमराज और कार्तिकेश्वर का प्रवेश। भीमराज शक क्षत्रप चंचु को पकड़कर दायें हाथ से उसका कण्ठ पकड़े ठेलते आ रहे हैं।]

विक्रममित्र

मित्रो ? बोलो महाकाल की जय...गरुडध्वज की जय... महात्मा काशिराज की जय...

(सब एक ही साथ जयजयकार करते हैं)

कुमार अभी तुम महाकाल के सामने प्रणत हुए या नहीं ? राजमाता महादेवी के चरणों पर अभी गिरे या नहीं ..?

चक्रपाणि

अभी यहीं महात्मा काशिराज मूर्छित होगये थे...

विक्रममित्र

(काशिराज को छाती से लगाकर) क्या होगया...इतना आनन्द मेरे बन्धु रोक नहीं...जाओ कुमार ? अब क्या खड़े हो...महाकाल के दर्शन कर माता के चरणों पर गिरो, उन्हीं चरणों की कृपा से तुम आज विजयी हुए। कालिदास और मान्धाता तुम दोनों भी जाओ।

शातकर्णि और कार्तिकेश्वर

हम लोग भी आचार्य ! माता के चरणों पर आज हम भी गिरेंगे।

विक्रममित्र

किन्तु तुम दोनों ब्राह्मण हो, वहाँ भी तुम्हें आशीर्वाद ही देना होगा। कालिदास भी तो आशीर्वाद ही देता है उन्हें...

ब्राह्मण बालक भी उनके लिए विष्णु और शिव है। जाओ तुम दोनों भी जाओ....

भीमराज

(क्षत्रप को वहीं दबाकर बैठा देते हैं) बस यहीं से उठना मत. भागने की चेष्टा न करना...मैं भी महाकाल की पूजा कर आऊँ...और मैं तो क्षत्री हूँ...राजमाता के चरण मुझे तो सुलभ होंगे।

विक्रममित्र

जब तक यह पृथ्वी रहेगी...इस देश में जब तक शंकर और विष्णु रहेंगे तुम्हारा नाम वीरों का आदर्श रहेगा। जाओ...छोड़ दो इस आततायी को यहीं....तुम्हारे पराक्रम से इस वृद्ध का स्नायुजाल आज फिर तमतमा उठा है।

(विक्रममित्र, काशिराज और बन्दी क्षत्रप को छोड़कर सब का प्रस्थान !)

काशिराज

आचार्य !

विक्रममित्र

आप मुझे आचार्य कहेंगे ! मर्यादा न मिटाइये... यह सेवक केवल मर्यादा के सहारे यहाँ तक आ सका है।

काशिराज

अच्छी बात सेनापति ! आचार्य शब्द का प्रयोग तो आपके लिए तक्षशिला के यवन भी करते हैं। आपने इस देश के गौरव का उद्धार --

विक्रममित्र

(हाथ से रोकते हुए) यह कुछ नहीं...मुझे इस प्रशंसा से कष्ट होता है। यह देश मेरा उद्धार कर रहा है, मैं इसका उद्धार

क्या करूँगा ? देश के गौरव, इसके सुख और शान्ति की रक्षा मेरा धर्म है। बस यही इतना विश्वास मेरा बना रहे...फिर मुझे तो इसी में निर्वाण मिल जायेगा।

काशिराज

यही इतनी बात मैं पहले समझ पाता तो फिर मेरे लिए पश्चात्ताप का यह भारी पहाड़ नहीं खड़ा होता। जो चला गया मेरे लौटाये तो अब लौटता नहीं। हाँ...तो (उनके मुख की ओर देखते हैं)

विक्रममित्र

जी कहिए...

काशिराज

कालिदास को आप मुझे दे दीजिये। मेरी कन्या के साथ काशी मण्डल का अधिकार भी...

विक्रममित्र

आपका विचार मेरे मन के ही...किन्तु मैं उसे समझा कर थक गया...आपकी इच्छा पूरी हो, आपको सन्तोष मिले इसके लिए यहाँ युद्ध की स्थिति में भी जब अवसर मिला है...जब कभी मेरे पास वह आया है....मैं बराबर उसे आपके अनुकूल...

काशिराज

तो कहते भी क्या हैं...मैं भी सुनूँ...

विक्रममित्र

राज्य का झंझट वह नहीं चाहता। वह समझता है...उसे ऐसा ही विश्वास हो गया है कि किसी भी तरह की प्रभुता में पड़कर वह सरस्वती की कृपा से वंचित हो जायेगा! कवि कर्म तभी तक चलता है जब तक कोई भी दूसरी आसक्ति नहीं छू पाती।

काशिराज

तब तो मैं यहाँ भी असफल रहा। मेरा यह जन्म ही निष्फल है।

विक्रममित्र

(कुछ सोचते हुए) किन्तु कोई दूसरा योग्य कुमार....

काशिराज

कह नहीं सकता क्यों कालिदास की ओर मेरा मन इस तरह झुक गया है। मैं सपने में उसे देखता हूँ वासन्ती के साथ...मन की यह दशा किसी भी दूसरे और विचार को आने नहीं देती। जिस दिन आप की आज्ञा से मेरे भवन में वे गये थे...घोर उत्तेजना की बात मेरे पारिषद् और संघस्थविर कर रहे थे... किन्तु लेश मात्र भी उत्तेजना उनके भीतर नहीं आ पाई। कटूक्तियों पर वे जब हँसने लगते थे...जैसे मेरे लिये यह लोक ही बदल गया। तर्क और विवाद जो इस प्रकार बचा जाय और जिसके शील की मिठास सब ओर भर जाय...

विक्रममित्र

मैंने ठीक पुत्र की भाँति उसका पालन किया है। पुत्र के लिए भी लोग इतने द्रवित न होते होंगे।

काशिराज

और अब मैं अपना वही अभाव मिटाने के लिए आपसे माँग रहा हूँ।

विक्रममित्र

मैं तो इसमें कोई आपत्ति नहीं करता। मैं सारा जीवन इसी प्रकार बिताता रहा हूँ। अपने लिए मैंने कहीं भी कुछ रक्षित नहीं किया। मोह का अन्तिम...नहीं मुझे इसका भी

मोह नहीं....मैं सब कुछ....बन्धन के सारे धागे मैं तोड़ता आया....फिर इसे कैसे रख सकूँगा।

काशिराज

किन्तु आपका स्वर भारी हो रहा है और...

विक्रममित्र

मनुष्य का विकार मुझ में भी है। प्रकृति ने विकार मनुष्य को ही दिया। हमारे नीचे....हमसे उतर कर जो पशु हैं उनमें विकार आप को नहीं मिलेगा। फिर अपने इस सत्य से मैं क्यों छूट सकूँगा। दस वर्ष की अवस्था से इधर पन्द्रह वर्ष जिसकी नींद सोता और जागता रहा...उसके चले जाने पर मेरे भीतर जो गर्त बन जायेगा...

काशिराज

सेनापति! ऊपर से वज्र और भीतर से इतने कोमल.... नहीं...नहीं मुझे अब मेरे भाग्य पर छोड़िये! बात की बात में आपने राज्य छोड़ दिया था जैसे वह कुछ था ही नहीं...किन्तु यह त्याग आपके लिये असह्य है देख रहा हूँ मैं....

विक्रममित्र

(सम्हलने की चेष्टा में हँसते हुए) अरे भाई! तेरह वर्ष और बस सौ जा लगेंगे। मनुष्य अमर नहीं होता..मुझे अब छुट्टी लेनी चाहिए! ऐसी छुट्टी जिसमें खोजने पर भी लगाव न मिले। इसमें भी मुझे अब आनन्द है आप कालिदास को ले जाइये। आप अपनी यह इच्छा कुमार विषमशील से कहिये वे मुझसे पूछने आयेंगे, मैं आपके पक्ष की बातें कहूँगा और यदि महाकाल....

मेरा तो साहस नहीं होता। वे मुझे उन्माद ग्रस्त समझेंगे।

विक्रममित्र

आप उनसे कहभर दीजिये, और व्यवस्था तो मेरी होगी।

काशिराज

प्रसन्नता से कह रहे हैं आप...आप को इसमें दुःख तो न होगा ?

विक्रममित्र

प्रसन्न हूँ मित्र मैं। आज की प्रसन्नता में शंका भी क्या ? अवन्ती के उद्धार से बढ़कर प्रसन्नता का अवसर और क्या होगा ? (मुस्करा कर) त्याग के भीतर से ही प्रसन्नता निकलती भी है, नहीं तो फिर हम त्याग की पूजा क्यों करते ? आप जाओ...वहीं मण्डप में राजमाता के सामने अपनी कामना कह दो।

(काशिराज का प्रस्थान। भीमराज का प्रवेश)

भीमराज

राजमाता ने तो मेरा बड़ा सम्मान किया आचार्य ! दुर्गा की शक्ति उनके भीतर है...उनके पुण्य से ही हम विजयी हुए !

विक्रममित्र

नारी शक्ति से ही पुरुष को विजय मिलती है और फिर जहाँ माता की प्रेरणा काम करे, वहाँ असाध्य और असम्भव कुछ नहीं है।

भीमराज

और इस म्लेच्छ शक के लिए क्या आज्ञा है ?

विक्रममित्र

अरे हाँ..अभी यहीं बैठा है...मैं तो इसे भूल ही चुका था किन्तु होगा क्या...यह युद्ध बन्दी है। इसके आचरण पर तो हम न्याय कर नहीं सकेंगे। (एक ओर से कुमार शातकर्णि, कार्तिकेश्वर, मान्धाता और कुमार विषमशील का प्रवेश और

दूसरी ओर से कमण्डलु लिए किसी अपरचित जटाधारी साधु का प्रवेश ।)

साधू

इसके आचरण पर न्याय यहाँ नहीं होगा तो फिर कहाँ होगा ?

[सब उसकी ओर विस्मय से देखते हैं]

विक्रममित्र

किन्तु महात्मन् यह युद्ध बन्दी जो है ।

साधू

यह केवल युद्ध वन्दी ही नहीं है । अवन्ती के राजभवन, उद्यान, मन्दिर एक एककर इसने सभी गिरा दिये । कुल दस महीने ही तो अवन्ती इसके अधिकार में रही । यह यहाँ की प्रजा का कल्याण करता । राज भवनों और मन्दिरों की रक्षा और उनका निर्माण करता । उद्यानों के लिए भी कुछ प्रबन्ध करता । अलका को भी लज्जित करने वाली अवन्ती आज नङ्गी और भूखी है । उस सुन्दरी के केश काट लिए गए...उसकी आँखें फोड़ दी गईं और वह धरती पर पड़ी पड़ी अपनी अन्तिम सासें गिन रही हैं....इसका न्याय होना चाहिये !

विक्रममित्र

कौन हैं महात्मा आप···

चञ्चु

अरे ! तुम...तुम्हीं ने तो यह सब किया और आज मुझे अपराधी बना रहे हो। मीननगर तुम्हीं तो गये । महाक्षत्रप मेवकि को अवन्ती के आक्रमण के लिए तुम्हीं ने उत्साहित किया । इस अवन्ती में जो कुछ भी हुआ...जितना ध्वंस और अत्याचार, सब तुम्हारे कहने से और आज इतना पाखण्ड बनाकर यहाँ आये हो । नीच लज्जा नहीं आती तुझे....डूब मर

सिप्रा में जल नहीं है क्या ? हम शकों में शिल्पी नहीं होते... निर्माण तो हमें यहीं इस देश में कुछ करने पड़ रहे हैं... हमारी जाति केवल युद्ध जानती है...जो हमारा धक्का नहीं सह सकते हमारे पैरों के नीचे आ जाते हैं। हम उनके नगरों का ध्वंस करते हैं...उनके धन और उनकी कन्याओं का अपहरण करते हैं। मुझे या मेरे सैनिक जो यहाँ आज पकड़े गये हैं...जिन्होंने बाध्य होकर अपने जातीय स्वभाव के प्रतिकूल शास्त्र रखकर वन्दी होना भी स्वीकार किया है उनके बध से हमारी जाति का यह स्वभाव नहीं छूटेगा।

साधू

(बनावटी जटा और मूछें फेंककर) देख मैं तेरे सामने जैन कालकाचार्य हूँ...

चन्चु

(हँसते हुए) वह तो मैंने देख लिया...तुम्हें पहचान कर ही तुम्हारी कीर्ति का परिचय तुम्हारे इन वीरों को मैंने दिया है। पाखण्डी...

कालकाचार्य

(क्रोध में दहककर) इसोलिए मैं यहाँ आगया कि कहीं इस जाति का जो स्वभाव है उसके अनुसार तुम क्षमा न कर दिये जाओ...स्वर्गीय महेन्द्रादित्य के वैदिक विधान हमारे लिए जैनों और बौद्धों के प्रतिकूल पड़ते थे...उनकी मृत्यु और गर्दभिल्ल सत्ता की पराजय मेरे कारण हुई इसे तो मैं अस्वीकार नहीं करता...

चन्चु

तब क्या अस्वीकार कर रहे हो मीननगर से अवन्ती तक का सारा मार्ग तुमने नहीं दिखाया ? हमारी सेना के आगे तुम नहीं रहे...

कालक

चुप क्यों नहीं रहता वाचाल ! मैं तो सब कुछ कहने ही यहाँ आया। दोनों हाथ कटाकर तेरे साथ ही अवन्ती के बाहर किसी चौराहे पर मैं भी पड़ा रहूँगा। मेरा क्रोध या संघर्ष जो कुछ तू समझे महेन्द्रादित्य से था या अवन्ती के निवासियों, उनके भवनों, रंगशालाओं या उद्यानों से। मन्दिरों और भवनों का विध्वंस भी करने को मैंने कहा ? प्रजा का धन और रक्त बिगाड़ने के लिये भी मैंने तुझसे कभी कहा ?

चञ्चु

जब तुमने हमारी सेना को अवन्ती में घुसने का रास्ता निकाल दिया फिर तो हमारे सैनिकों ने अपने जातीय स्वभाव के अनुसार ही आचरण किया। क्या तुम नहीं जानते थे कि हमारा स्वभाव क्या है। हमारे घरों में पशुओं और शत्रुओं के सिर लगाये जाते हैं, अवन्ती की तरह रंगीन और भावमुद्रा के चित्र नहीं।

कालक

(विक्रममित्र की ओर देखकर) सेनापति !

विक्रममित्र

कहो महापुरुष ! इस नृशंस के शब्दों से तो यह पृथ्वी फट जानी चाहिए...इस सारे देश को...यहाँ की सारी भूमि को रसातल लग जाना चाहिए। (हथेली पर ललाट रख देते हैं)

कालक

मैं दया नहीं चाहता...मेरे कारण इस देवलोक में जो ये हिंसक विधर्मी घुस आये, उसका प्रायश्चित्त भी नहीं है। मेरे साथ ही इस नृशंस को भी प्राण दण्ड दीजिये।

विषमशील

हाँ-हाँ...यही होगा (क्रोध से काँपने लगते हैं)

विक्रममित्र

किन्तु इससे होगा क्या पुत्र ! तुम्हारे स्वर्गीय पिता अब नहीं आयेंगे। हमें अपनी प्रतिहिंसा में भी महान दुःख होता है। हमारे दुर्भाग्य से अवन्ति-आकर का तो सर्वनाश हुआ ही...इन दोनों के प्राणदण्ड से कुछ भी बन जाय, कोई नया निर्माण हो जाय, तो अभी भी (दायाँ हाथ उठाकर) इसी हाथ से मैं इनका मस्तक छिन्न कर दूँ। अभी इतना बल तो इसमें है।

विषमशील

हाय ! हाय ! आचार्य ! माता जब सुनेंगी मेरे पिता का हत्यारा यहाँ आया और जीवित लौट गया तो हम लोगों का मुँह भी वे देखेंगी ? वे जल और अन्न ग्रहण करेंगी...? सिप्रा के जल में वे...

विक्रममित्र

धैर्य और क्षमा...और इसका निर्णय मैं महादेवी से ही कराऊँगा। यह विधर्मी हिंसा और बर्बरता को अपना जातीय धर्म कह रहा है...उसके दम्भ में इसकी छाती फूल उठी है। हमारा भी जातीय धर्म देख ले यह...हमारी ही तरह यह भी तो मनुष्य है। अब तुम कहो जैन पण्डित ! क्या चाहते हो ? अवन्ती तुम्हारे लिये छोड़ दी जाय ? अपनी रुचि और बुद्धि से तुम यहाँ का शासन करोगे ? प्रजा के प्रकृति धर्म का निर्वाह करना चाहो तो मैं आज घोषित करा दूँ कि आज से अवन्ती पर तुम्हारा अधिकार है।

कालक

मुझे इस तरह लज्जित न कीजिये सेनापति ! पतित होते हुए भी मैं साधु हूँ...मेरा काम जैन विद्या का आदान प्रदान है...राज्य और राजनीति में मैं क्या पड़ूँगा।

विक्रममित्र

मेघवाहन खारवलि भी जैन थे। उन्हीं की पुत्री महादेवी सौम्यदर्शना हैं कुमार विषमशील उन्हीं के पौत्र हैं...जैन गुरु कालकाचार्य की विद्या उनकी रक्षा में लगी होती और कहाँ वही इस नाश में लग गये।

कालक

देखिये मैं अपने रक्त से उस कलंक को धोने आया हूँ। आज जो मैंने पीछे से षड्यन्त्र कर कुमार की सेना पर आक्रमण किया वह केवल प्राण बचाने के लिये। मैं इस आशा में था कि कुमार को मिटाकर मैं संकट से बच जाऊँगा किन्तु जब मेघरुद्र के बाणों से मेरा योग और अनुष्ठान सब व्यर्थ गया... जिन हाथों से पचास वर्ष तक शस्त्र का अभ्यास किया वे जब ढीले पड़ गये...मैं देख रहा था मेघरुद्र नहीं साकार अग्निदेव मुझसे युद्ध कर रहे थे..जिनकी ओर देखने में मेरी आँखें झप जाती थीं...भागने पर पता चला कि भैरवघोष-कुमार के पहले ही बाण से मारा गया तब तो...

विक्रममित्र

क्या...तब...

कालक

यहाँ विकार के दो ही स्तम्भ थे भैरवघोष और मैं! एक स्तम्भ टूट गया अब एक पर वह भवन टिक नहीं सकता। किन्तु आचार्य! देवप्रिय अशोक से सम्प्रति तक इस देश की राजनीति राजा के मन्त्रिपरिषद् में नहीं बनाती थीं। प्रायः दो सौ वर्ष तक तो यहाँ की राजनीति बौद्ध और जैन संघरामों में बनती रही है।

विक्रममित्र

स्वाभाविक है मित्र...महेन्द्रादित्य तुमसे स्वतन्त्र होना चाहते थे तुम इस आचरण को क्षमा न कर सके।

कालक

हाँ...हमारा अभ्यास जो बिगड़ चुका था। हम अपने दम्भ में राजनीति को साम्प्रदायिक उपज मानते थे।

विक्रममित्र

इसीलिए तो जिस यवन सेलुक को हराकर चन्द्रगुप्त ने भारत की सीमा कुभा तक पहूँचा दी थी...उसकी कन्या को अपनी रमणी बनाया उसी के वंशज सिन्धु के पार तक फैल गये।

कालक

निश्चय....आचार्य विष्णुगुप्त की राजनीति बराबर भिक्षुओं के हाथ में रही जो अपने लघुदण्ड से अपना ही भार नहीं सम्हाल सके फिर इस पूरे देश का भार उनसे क्या चलता।

विक्रममित्र

इसीलिए तो नहीं चला। विदेशी यवन इस देश पर आतंक जमा बैठे। राजा का धर्म क्या है इसका प्रदर्शन उसे नहीं करना है। उसके राज्य के सभी मत अपने रास्ते चलते रहें वह सब की रक्षा करे। प्रजा अभाव से बची रहे मैं तो एकमात्र राजा का यही धर्म जानता हूँ। निर्वाण और मोक्ष भी पहले प्रजा को मिले और तब राजा उसे ले जो प्रजा उसे उसकी सेवा का पुरष्कार समझे।

कालक

भैरवघोष जीवन भर मुझे अपने वश में रखकर मरा। मेघवाहन खारवलि का आदर्श भी मैं भूल गया। किन्तु अब यह सब वितर्क व्यर्थ है। (चंचु की ओर देखकर) कहो दस्यु-राज...अच्छा हो हम दोनों द्वन्द युद्ध करलें।

चंचु

शस्त्र तो मेरे छीन लिये गये हैं। किन्तु कोई बात नहीं तुम कहते हो तो फिर नख और दंत से युद्ध कर लिया जाय। तुम जिसे अपने घर में बुलाओगे उसके लिए स्थान भी करोगे नहीं तो फिर वह तुम्हें ठेलकर उसमें जम जायगा। मैं तो यहाँ केवल दास था...अपने स्वामी मेवकि और तुम्हारी आज्ञा पर मुझे चलना पड़ा।

कालक

मन्दिरों और मूर्तियों के रत्न तुमने निकाल लिए मेरे कहने से ?

चंचु

(निर्भय मुस्कराकर) रत्न दीवाल में और पत्थर में जड़े जाने के लिए नहीं हैं। हमारे महाक्षत्रप ने उन रत्नों को अपने भाण्डार में रख दिया है।

कु० विषमशील

आचार्य ! आदेश कीजिये मैं इस कटुभाषी की जीभ निकाल लूँ।

विक्रममित्र

तुम्हारा सबसे बड़ा गौरव यही है कि यह विष उगलता चले और तुम धैर्य से सब सुन लो ? चन्दन पर सर्प फण मारते ही हैं। कालक हम लोग तुम्हें सन्तुष्ट करेंगे बोलो अब क्या चाहते हो ?...

कालक

दण्ड . केवल दण्ड और कुछ नहीं ..वह भी स्वयं महादेवी से दण्ड मिले तभी मेरा प्रायश्चित पूरा होगा।

विक्रममित्र

(गम्भीर मुद्रा में) तो फिर चलो...कुमार ? इस समय महादेवी के निकट में ही रहूँगा और बस जैन आचार्य कालक...

[विक्रममित्र के साथ कालक का प्रस्थान]

कालक

(चलते हुए चंचु के सिर पर लात मार कर) चल देख ले तू भी...हमारा जातीय स्वभाव...क्या है ?

(चंचु मुँह खोलकर दाँत से काटने के लिए दौड़ता है। भीमराज उसकी गर्दन पकड़ लेते हैं। और उसे ठेलते हुए आगे बढ़ते हैं।)

कु० विषमशील

कालक को प्राण दण्ड नहीं मिलेगा तब तो मैं अवन्ती छोड़ दूँगा।

कालिदास

कुमार ! आचार्य और महादेवी के न्याय में विश्वास करना ही होगा।

कु० विषमशील

तुम भी कह रहे हो यह कवि...मैं तो यह समझे था हम दोनों दो देह एक प्राण हैं।

कालिदास

इसका प्रमाण आपको अभी मिल जायेगा। आपकी सेवा में रह कर मुझे अब जीवन बिता देना है।

कु० विषमशील

आचार्य तुम्हें अपने साथ रक्खेंगे मित्र ! वह भाग्य मेरा कहाँ कि मैं नित्य तुम्हारी वाणी में अभिषिक्त होकर गौरवशाली बनूँ।

कालिदास

नहीं...आचार्य अब संन्यास लेंगे।

कु० विषमशील

हें...

कालिदास

मुझसे कह चुके हैं और यह भी कह चुके हैं कि मुझे अब आपके संरक्षण में रहना होगा।

कु० विषमशील

(उन्हें पकड़कर छाती से लगाते हुए) तब यह अवन्ती अमरावती बनेगी।

कालिदास

तो क्या मैं कोई यक्ष हूँ...

कु० विषमशील

हाँ वही मेघदूत के...

कालिदास

(मुस्कराकर) अरे ! तब तो किसी यक्षिणी के लिए मेरा निर्वासन होगा।

कु० विषमशील

उस यक्षिणी से यक्ष का वियोग हुआ था और इस यक्ष का संयोग होगा इतना ही अन्तर...

कालिदास

परिहास नहीं कुमार ! कामिनी से जो कुछ भी मिल सकता है उससे बहुत अधिक मुझे अपने काव्य से मिल रहा है। उस बेचारी के लिए इस मन में कहाँ जगह मिलेगी जिसमें पार्वती आ चुकी हैं। पार्वती-शंकर के प्रेम में मैंने अब उस अभाव को पूरा कर लिया है।

कु० विषमशील

क्या...तुम अविवाहित रहोगे? वही बौद्धों वाली बात...

कालिदास

नहीं, मैं बौद्धों की भाँति इन्द्रियजयी होने का दम्भ न करूँगा। प्रकृति की सबसे बड़ी शक्ति, सबसे बड़े आकर्षण नारी की महिमा मैं जानता हूँ...इसीलिए मुझे साहस नहीं होता और फिर कुमार! विवाह सामाजिक स्वीकृति है और मेरा कोई समाज नहीं।

कु० विषमशील

क्या कह रहे हो मित्र! हम लोग तुम्हारे समाज नहीं हैं!

कालिदास

नहीं...मैं आप लोगों को अपना रक्षक अपना त्राता मानता हूँ...मेरा समाज तो कहीं सरयू के तट पर...पता नहीं मेरे कुल में भी वहाँ अब कोई होगा या नहीं...मैंने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था यह भी...तो मैं अपनी सूचना देता हूँ...किसी को विश्वास कैसे होगा कि मेरा जन्म किस वंश में हुआ था और मेरे जैसे अज्ञात कुलशील को अपनी कन्या भी कौन देगा?

काशिराज

(प्रवेश कर) क्या कह रहे हो पुत्र! तुम्हें जन्म देकर इस देश के श्रेष्ठ कुल भी अपने को गौरव से भर लेंगे। यह कामना किसे न होगी यदि तुम मिल सको। किन्तु अब रोक नहीं सकता...जिस दिन अपने परिषद में तुम्हें देखा...तुम्हारा शील और संयम...उसी दिन मेरे मन में यह बात आ गई। मैं तुम्हें अपनी कन्या दे रहा हूँ साथ ही साथ अपना राज्य भी...

कालिदास

(गुन-गुनाकर) आपका चित्त स्वस्थ नहीं है। दान में पात्र

का भी विचार कर लीजिये...पर्वत उठाने के लिए हनुमान की शक्ति चाहिए ! कल्पना के इन्द्रजाल में इतनी दूर जाकर मैं अब वास्तविकता की ओर देख भी न सकूँगा। और कोई भी कुमारी जब मेरे सामने आती है...मैं उससे उसी तरह भय खाता हूँ जैसे वह स्वयं पार्वती हो।

काशिराज

तो शिव के उपासक तुम अपने को शंकर से पृथक् क्यों समझ रहे हो। एक ही पार्वती और शंकर के कारण यह जगत पार्वती और शंकरमय है। मैं तो तुम्हें अब अपनी कन्या दे चुका...तुम उसे अस्वीकार कर सकते हो। सम्भव है तुम उसे अपवित्र समझो अपनी ही कन्या का सर्वनाश मैंने मूर्खतावश कर दिया और अब उसका जीवन नष्ट है। (धरती पर बैठ कर हथेली पर सिर रख लेते हैं)

कालिदास

कभी नहीं...उनके उद्धार के समय आचार्य के साथ मैं भी था। मैं सब कुछ जानता हूँ...उन्होंने तो उस यवन को देखा भी नहीं फिर उनकी पवित्रता में शंका करना तो पार्वती की पवित्रता में शंका करना होगा। उनके योग्य वर की चिन्ता कीजिए...जब कभी वे मेरे सामने आ पड़ी हैं मैं अपनी हीनता से दब गया हूँ...

विक्रममित्र

(प्रवेश कर) क्या तर्क है यह...भूल गये उसने उस दिन सिंहासन और गरुडध्वज के सामने तुम्हारे कण्ठ में माला डाल दी।

कालिदास

आचार्य...!

विक्रममित्र

हाँ . हाँ .. कहो...

कालिदास

वह तो काशी से बिना रक्तपात के सकुशल काशिराज को विदिशा तक पहुँचा देने की कृतज्ञता थी।

विक्रममित्र

ओह ! तो उस दिन तुम उस राजपुत्री के पिता के रक्षक के रूप में खड़े थे ? तुम्हारी आँखों ने नहीं देखा उसका रोम-रोम आनन्द से खड़ा हो गया था, वह पुलक में पसीज रही थी। तुम जिस डाल पर खड़े हो उसी को काट रहे हो। इस अवस्था में दाम्पत्य कर्म से भागना अपने आधार से भाग खड़ा होना है। तुम्हारे जन्म में प्रकृति ने जो बीज डाल दिया था उन्हें बोना होगा।

कालिदास

तो क्या कुमार (विषमशील की ओर देख कर) को छोड़कर मुझे काशी जाना होगा ? आपके पूर्वज सेनापति ही रहे और मैं राजा बनूँगा ? मेरे जन्म में प्रकृति ने राजा बनने का बीज भी डाल दिया था क्या ? प्रकृति के वन, पर्वत, नदी, नक्षत्र चन्द्रमा और वसन्त की वायु के साथ जो मेरा चिर संयोग रहा है वह भी छूट जायेगा। हंसवाहिनी-कल्याणी-सरस्वती की वीणा के स्वर मेरे कानों में न पड़ेंगे ?

विक्रममित्र

(काशिराज) देखिये मनुष्य की सभी कामनायें पूरी नहीं होतीं ..नहीं तो फिर तो हम लोग कामनाहीन हो जायँ। कामना चलती रहती है हम भी चलते रहते हैं...अन्यथा फिर तो हम लोग जड़ हो जायेंगे।

काशिराज

तब....

विक्रममित्र

वासन्ती तो कालिदास को अपना चुकी हैं आज यह भी उसके सामने झुक गया...अब रही राज्य की बात आप उसे सम्हालिये।

कु० विषमशील

बड़ों की बातों में मैं क्या पड़ूँ? इतना तो होता ही कि मेरे साथ रहने पर कवि राजा होते और मैं होता कवि।

विक्रममित्र

(हँसते हुए कुमार के कन्धे पर हाथ रखकर) यह न सोचना कि तुमने केवल अपने इस कवि को विवाह के लिये प्रेरित किया है। मलयपूर की कुमारी मलयवती को भी तुम्हें ही....

कु० विषमशील

मैं तो विवाहित हूँ, कवि की भाँति मैं अभी किशोर नहीं हूं..

विक्रममित्र

राजनीति है वत्स! इस विवाह से पाड्यराज के उत्तराधिकारी तुम्हीं बनोगे। दक्षिणा पथ में भी तुम्हारा प्रभुत्व बढ़ेगा।

कु० विषमशील

किन्तु आर्य!

विक्रममित्र

विदिशा में जब तुम महादेवी के साथ गए थे। मलयवती तुम पर उसी समय अनुरक्त हुई थी। वासन्ती ने भी तुम्हें देखा था किन्तु वह तुम्हारी ओर कुछ भी नहीं झुकी। कालिदास जिस समय मुझे 'कुमारसम्भव' सुनाते थे वह तन्मय होकर अपने को भूल जाती थी। अनुराग इसी शरीर के साथ नहीं चलता उसका सम्बन्ध तो जन्मान्तर से है।

काशिराज

अच्छी बात तब काशी भी अवन्ती में मिला दी जाय।

कालिदास

यही तो मैं चाहता था। अब मैं कुमार विषमशील का अन्तरंग सखा हो सकूँगा। अब इसमें कोई सन्देह नहीं।

कु० विषमशील

अपना प्राप्य मुझे देकर क्यों मित्र !

कालिदास

मेरा प्राप्य कोई राज्य नहीं है कुमार ! मेरा प्राप्य...

विक्रममित्र

(काशिराज का हाथ पकड़ कर) चलिए यहाँ से हम लोग... इन दोनों को छोड़ दीजिये...आपस में इन्हें समझ लेने दीजिए... अभी मुझे और भी तैयारी करनी है।

(विक्रममित्र और काशिराज का प्रस्थान)

कु० विषमशील

क्यों जी क्या कह रहे थे...

कालिदास

यही कि मैं किसी धरती पर राज्य क्या करूँगा। मेरा राज्य होगा कुमार विषमशील और मलयकुमारी मलयवती पर....

कु० विषमशील

अरे ! तब तो भाई ! तुम उन, दोनों सखियों का वरण करो।

कालिदास

किस तरह...भूल गये विदिशा के प्रासाद का वह उपवन... घूम-घूम कर मलयकुमारी को आँखों से पी जाना चाहते थे...

कु० विषमशील

(कालिदास के कान के पास मुँह कर) क्यों जी एक ही साथ जहाँ कई सुन्दरियाँ होती हैं...किसी एक की ओर चित्त कैसे रम जाता है...

कालिदास

इसका उत्तर तो भगवान पुष्पधन्वा ही दे सकेंगे।

कु० विषमशील

कवि और कामदेव उच्चारण में तो जैसे दोनों सहोदर हैं। अपने उन बड़े भाई का काम कर डालो तुम...

कालिदास

सो तो मैंने उस दिन कर दिया! मेरे ही संकेत पर तो वासन्ती मेरे साथ प्रासाद में चली गई ..और फिर तो श्रीमान कुछ ऐसे आत्मीय हो गये कि मलयकुमारी का सारा भय छूमन्तर हो गया और उन्होंने श्रीमान को अपने सभी चित्र दिखाने के बहाने घड़ियों अपने कक्ष में रखा।

कु० विषमशील

तब तो वह सब आचार्य से तुमने कह दिया होगा।

कालिदास

आचार्य के सामने कुछ भी कह देना बड़ा कठिन है। मैं तो अपने छन्द भी इन्हें सुनाने में काँपता रहता हूँ फिर इस तरह की बात मैं क्या कह पाता? किन्तु आचार्य देखने और समझने में नहीं चूकते। उन्होंने उसी दिन...जब आप सभा भवन में आये उनके कक्ष से निकल कर बड़े ध्यान से आपकी ओर देखा था।

कु० विषमशील

ऐं...

कालिदास

और उसके पीछे ही जब महादेवी उनके पास आईं उन्होंने हँसते हुए कहा था उनसे ..

कु० विषमशील

क्या....माता जी से....

कलिदास

हाँ....माता जी से उन्होंने कहा कि अवन्ती के उद्धार पर मलयवती को भी उन्हें अपनी पुत्र बधू बनाना होगा। आचार्य तो हम लोगों के मन में भी कुछ छिपने नहीं देते। कुमारी वासन्ती के उन दिनों रात दिन रोते रहने से चित्त चञ्चल हो उठा था....मैं इस चेष्टा में था कि किसी भी प्रकार से उन आँसुओं को रोक सकूँ।

कु० विषमशील

इसलिए तो...उनके लिए तुमने जो....और मित्र यह देखो इन दोनों सखियों का संयोग हम दोनों से होना था।

कालिदास

आचार्य ने यह सब इतना कर दिया कुमार। एक ही साथ क्षण भर में यह इतना हो गया किन्तु...क्या मैं कुमारी वासन्ती को सुखी कर सकूँगा ?

कु० विषमशील

इसमें सन्देह क्या है ?

कालिदास

(गंभीर होकर) कुमारी कल्पना और कुमारी वासन्ती....इन प्रेमिकाओं के साथ...निभ सकेगी ? कभी एक मान करेगी और कभी दूसरी....

कु० विषमशील

(मुस्करा कर) किन्तु कवि ! कल्पना तो सदैव कुमारी ही रहेगी। हाँ वासन्ती अब कुमारी न रहेंगी...अब तो वह

विवाहिता होंगी। तुम्हारे सहवास में तुम्हारी अक्षय शील-सम्पत्ति में उनका भी भाग होगा।

कालिदास

कुमार ! समझ नहीं रहा हूँ.....

कु० विषमशील

क्या...(विस्मय से देखते हैं)

कालिदास

कुमारी वासन्ती के निकट रहने का उस समय मन होता था। आचार्य मुझे बराबर उनके पास किसी न किसी प्रयोजन भेजा करते थे। मेरा मन उनकी वीणा के स्वरों पर चढ़कर कहीं चला जाता था किन्तु अब यह जानकर कि वे मेरी पत्नी होंगी...मैं हिल रहा हूँ।

कु० विषमशील

किन्तु क्यों...पुरुष जन्म की सबसे बड़ी सिद्धि है मित्र ! रूपवती नारी और जहाँ रूप और गुण दोनों मिल जायँ फिर पुरुष के लिए अभाव क्या ?

कालिदास

मनकी बात कभी-कभी वाणी पर नहीं उतरती। हम पूरा कभी कह नहीं पाते। किन्तु एक बात जो मैं देख रहा हूँ...

कु० विषमशील

क्या हो रहा है कवि तुम्हें यह ? आनन्द के इस अवसर पर तुम्हारा चित्त इस भाँति खिन्न क्यों हो रहा है ?

कालिदास

ठहरिये। मैं देख रहा हूँ चकोर के सामने यहाँ मधुपर्क परसा जा रहा है, किन्तु उसे तो अग्नि चाहिए। आचार की आज्ञा मुझसे टूट नहीं सकती और काशिराज का आग्रह...उनका कातर दृष्टि से मेरी ओर देखना...दोनों महापुरुषों की अभिलाषा

पूरी हो। कुमारी वासन्ती से मेरे काव्य को प्राण मिलेगा....मेरी आँखें रूप से तृप्त रहेंगी....किन्तु

कु० विषमशील

फिर यह किन्तु क्या...

कालिदास

उन्हें मैं...लोक में पत्नी का जो अर्थ है मेरे लिए वही नहीं होगा। मैं वहाँ भी कवि रहूँगा।

कु० विषमशील

खुल कर...संकेत की भाषा में नहीं...क्या चाहते हो तुम करना...

कालिदास

कवि की सन्तान तो उसकी रचना है। वासन्ती से मैं काव्य उत्पन्न करूँगा...कोई दूसरी सन्तान नहीं। आचार्य विक्रममित्र को मेरे भीतर पुत्र मिला था और मैं वहीं पुत्र पाऊँगा अपने काव्य में...

कु० विषमशील

अरे! तब यह अनर्थ न करो। अभी आचार्य से मैं यह कह दूँ। उस बेचारी को जन्म भर रुलाने की क्या...

कालिदास

कैसा रुलाना मित्र! मैं उसमें इस प्रकार तन्मय हो जाऊंगा कि मुझे पाकर वह और कुछ भी नहीं चाहेगी। किन्तु इस समय मुझ पर विश्वास करो। यहीं तो वह मेरे साथ रहेगी। जिस दिन उसका यह अभाव तुम्हें देख पड़े मुझे दण्ड देना...और मैं वह सब करूँगा जिसमें वह सुखी हो....इस समय बस मुझे इसी रूप में रहने दो।

कु० विषमशील

अच्छी बात...तुम उनके साथ रहकर इतने कठोर होगे मैं यह नहीं मान सकता।

(मान्धाता का प्रवेश)

कुमार ! चलिये अपने इन कवि के साथ...

कु० विषमशील

कहाँ... !

मान्धाता

महाकाल के मन्दिर में आपका अभी अभिषेक होगा ?

कु० विषमशील

क्या...कालक का न्याय हो गया ?

मान्धाता

हाँ...

कु० विषमशील

क्या हुआ...

मान्धाता

महादेवी ने उसे क्षमा कर दिया। अवन्ती का निर्माण अब नये प्रकार से होगा। पूरे पाँच योजन भूमि में राजपथ निकालकर सभी भवन नये बनेंगे। कालक इस निर्माण का प्रधान अधिकारी होगा।

कु० विषमशील

कह दो मुझे यह कुछ स्वीकार नहीं है। मैं इस नगरी में नहीं रहूँगा। अभिषेक भी तब कालक का कर दिया जाय।

(विक्रममित्र के साथ कालकाचार्य, चञ्चु और भीमराज का प्रवेश)

यह क्या सुन रहा हूँ आचार्य !

विक्रममित्र

क्या पुत्र !

कु० विषमशील

तो क्या महादेवी ने भी इस हत्यारे को क्षमा कर दिया ? (कालक की ओर संकेत करते हैं)

विक्रममित्र

राजनीति की पहली कसौटी है शत्रु का सम्मान और जो शरण में आ जाय, अपने पाप के प्रायश्चित के लिये जो प्राणदण्ड की भिक्षा माँगे उसे प्राण दण्ड देना तो मनुष्य क्या पशु धर्म के भी प्रतिकूल है। जैन पण्डित ! तुम कुमार को आशीर्वाद दो।

कालकाचार्य

महादेवी सौम्यदर्शना की जय...कुमार विषमशील की जय...मैं तो अब अवन्ती के निर्माण में सम्मान की चिन्ता नहीं करता। अवन्ती का निर्माण मेरा सबसे बड़ा सम्मान होगा। कुमार ! अवन्ती के ढूह और उजड़े हुए उपवन, चित्रशालाओं और विनोद भवनों की आधी खड़ी दीवारें, मेरे हृदय में सौ-सौ बिच्छुओं के डंक मार रही हैं। इस कष्ट के आगे प्राणदण्ड में कष्ट क्या है। (कु० विषमशील दूर आकाश की ओर देखते रहते हैं।)

कालिदास

किन्तु इस निर्माण के साधन अभी कहाँ मिल जायेंगे ? जिन भवनों में रमणियों के नूपुर बजते थे...उन्ही में साँप की केंचुलें लटक रही हैं।

कालकाचार्य

(दौड़ कर कालिदास को छाती से लगाते हुए) युद्ध के समय तुम्हारी आकृति से जो विश्वास जो निष्ठा निकल रही थी उसमें मेरी सारी कालिमा जर कर स्वाहा हो गई। सम्राट् सम्प्रति के समय से अब तक जो धन हमारे जैन मठ में आया है वह अटूट है। सुवर्ण और रजत क्या दुर्लभ रत्नों की संख्या भी वैसी कभी

नहीं देखी गई। धन के उस संचित कोष पर दो वर्षों से बराबर अखण्ड दीप जलता रहा है वही धन मैं दे चुका हूँ अवन्ती के इस निर्माण के लिए। भैरवघोष ने भी इन म्लेच्छों से बचाने के लिए (चंचु की ओर संकेत कर) बौद्ध संघ का इस पूरे अवन्ति आकर के सभी संघों का धन मेरे हवाले कर दिया था वह धन भी इस निर्माण में लगेगा। धरती में दबा कर रखने से कहीं अच्छा होगा कि वह धन इस निर्माण में लग जाय।

कु० विषमशील

(घूमकर) खेद है जैन पण्डित। मैंने तुम्हारा...

कालक

कुमार ! मैं अब तक अवन्ति आकर के विनाश में लगा रहा, अब उसके निर्माण में लगूँगा। इन म्लेच्छ शक सैनिकों से जो आज ही तीस सहस्र बन्दी किये गये हैं शारीरिक श्रम लिया जायेगा। बन्दरों की भाँति पत्थर की शिलायें लेकर ये ऊँचे शिखरों तक चढ़ते जायेंगे क्यों चञ्चु...

चञ्चु

इसे तो मैं मान रहा हूँ...मेरे सैनिक आठ अंगुल के मार्ग से चल सकेंगे...बड़े-बड़े भार ढोने का अभ्यास तो इनका लड़कपन से है।

विक्रममित्र

हमारे भाग्य से तक्षशिला के प्रसिद्ध शिल्पी शीलभद्र अपने शिष्यों के साथ भी विदिशा से आगये हैं। अवन्ती के निर्माण का मानचित्र वे बना रहे हैं।

कु० विषमशील

जिन्हें गरुड स्तम्भ बनाने के लिए यवन सम्राट् अन्तिलिक ने भेजा है।

कालिदास

हाँ....वे पत्थर में प्राण डाल देते हैं। आकृतियों पर उनकी मुद्रायें, काव्य के शब्दों में नहीं आ सकतीं।

कालाकाचार्य

कुमार! आपकी श्री से अब अवन्ती त्रिलोक सुन्दरी होगी आचार्य।

विक्रममित्र

हाँ...पण्डित...

कालक

कुमार का अभिषेक कर दीजिये...मेरी आँखें फिर से विश्वास करना सीखें।

विक्रममित्र

महाकाल के मन्दिर में सारा प्रबन्ध हो चुका है। महादेवी हवन-कुण्ड के सामने पूजन कर बैठी हैं। महात्मा काशिराज पुरोहित को सहायता दे रहे हैं....बस कुमार के स्नान के लिए सप्त सरस्वतियों का जल उधर मण्डप में मिलाकर सोने के कलश भरे जा रहे हैं। कालिदास!

कालिदास

जी...आज्ञा

विक्रममित्र

भीमराज और मान्धाता की रक्षा में कुमार को स्नान करा दो। स्नान के समय इनके शरीर पर जल गिराने के लिए महादेवी ने कुमारियों का प्रबन्ध कर दिया है। तब तक हम लोग मन्दिर में जा रहे हैं।

(कालकाचार्य के साथ विक्रममित्र का प्रस्थान)

कु० विषमशील

आप लोग चलें मैं कवि के साथ आ रहा हूँ। (भीमराज और मान्धाता का प्रस्थान)

कु० विषमशील

(कालिदास के कन्धे पर हाथ रखकर) यह सब क्या हो रहा है मित्र ! जिस कालक ने अवन्ती का संहार कराया....वही अब उसका निर्माण करेगा ?

कालिदास

प्रकृति के संहार में निर्माण के बीज भी निहित रहते हैं। आपके प्रताप की, आचार्य की तपस्या की, सबसे बड़ी सिद्धि तो यही होगी कि संहारक कालक को निर्माण भी करना पड़े। (मुस्कराकर) किन्तु अब यहाँ से चल भी दीजिये नहीं तो अभी आप बन्दी किये जायेंगे।

कु० विषमशील

(चौंककर) क्या....

कालिदास

(मण्डप की ओर हाथ उठाकर) वह देखिये कुमारी मलयवती और वासन्ती दोनों सखियाँ इधर ही आ रही हैं।

कु० विषमशील

अरे तो क्या तुम छूट जाओगे ? तुम भी तो बन्दी बनोगे। तुम्हारे साथ बन्दी होने पर भी तुम्हारे काव्य का रस तो मिलेगा।

कालिदास

पता नहीं....कलिंगसेन और मलयवती...इन दो रसकुण्डों के बीच में आपको किसी भी दूसरे रस का अवकाश न मिले।

कु० विषमशील

और तुम्हारी वासन्ती....रूप और गुण का इतना अद्भुत मिश्रण...पता नहीं कितने कुण्ड इस एक पर्वतीय स्रोत के सामने हीन पड़ेंगे।

कलिदास

अपनी दृष्टि बचाये रहना....कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन श्रीमान की आँखें अटक जायँ.. तब तो....

कु० विषमशील

मनुष्य हूँ....सम्भव है किसी दिन....किन्तु मैं संयम न छोड़ूँगा...

कालिदास

अच्छी बात....तो मेरा क्या....लेखनी और पत्र आग में फेंककर...वीणा के तार काटकर कहीं रास्ते पर फेंक दूँगा और चल दूँगा फिर किसी बौद्ध विहार में जहाँ से आया था।

कु० विषमशील

जहाँ कहीं भी जाओगे मुझे वहीं पहुँचना होगा। आचार्य विक्रममित्र की यह विभूति अब इस जीवन में मुझसे क्या छूटेगी। अकृतज्ञ भी कोई कितना हो सकेगा?

कालिदास

(कुमार को दोनों बाहों में पकड़कर) परिहास में इतने अधीर.. इसी सुख के लिए...सहवास के इसी पर्व के लिए तो मैंने मिला हुआ राज्य छोड़ दिया।

कु० विषमशील

और वह राज्य मुझे देकर मुझ पर, मेरे मन, मेरे प्राण पर राज्य करने की युक्ति निकाल ली...मैं सुखी हूँ...तुम्हारा अधिकार मेरे मन पर सदैव बना रहे...महाकाल से बस मेरी यही याचना है।

(मलयवती के साथ वासन्ती का प्रवेश)

वासन्ती

स्नान का मुहूर्त बीत रहा है।

कालिदास

कुमार के शरीर पर जल आप दोनों डालें....यह पुण्य है... आप लोग अभी कुमारियाँ भी हैं....

मलयवती

हम लोगों ने महादेवी से इसकी अनुमति ले ली है। इस अधिकार से, इस आनन्द से हमें अब वंचित कौन करेगा ?

वासन्ती

इन कवि महोदय की शक्ति असीम है...कौन जाने...इनकी बात महादेवी .. कुमार और आचार्य भी तो नहीं टाल सकते।

कालिदास

इसकी ईर्षा न करो कुमारो ! अब तो अपने इस कवि का कान तुम जब चाहोगी मल दोगी।

वासन्ती

(उधर मुँह फेर लेती है)

मलयवती

(वासन्ती को पकड़कर) क्यों क्यों....इधर देखो...तुम्हारी शक्ति तो अब कवि से भी बढ़ गई...जो यहाँ सब पर शासन करेगा उसके कान तुम्हारी चुटकी में रहेंगे...

वासन्ती

और तुम...उसी तरह तुम भी तो कुमार पर...

कु० विषमशील

अब आप लोग आगे चलें और दोनों सेवक...आप लोगों के चरण आँखों में लेकर चलते हैं...जहाँ तक हम लोगों के कान की बात है, आप की उँगलियाँ जब चाहें अभ्यास कर सकती हैं।

वासन्ती

(मलयवती का हाथ पकड़ कर) बस अब चले आइये...आप लोग जो अब तक भागते रहे अब पकड़ जाने पर उस दण्ड से कहाँ बचेंगे।

(कुमार और कालिदास एक दूसरे को देखकर मुस्कराते हैं। सब का प्रस्थान)

[विक्रममित्र के साथ बातें करते पुष्कर का प्रवेश]

पुष्कर

जी हाँ...शक सैनिकों ने कुछ भी विरोध नहीं किया। भोजन के नाम से ही वे हँसने लगे, नाचने लगे और बात की बात में अपने शस्त्र धरती पर डाल कर वे वहीं धरती पर बैठ गये।

विक्रममित्र

और वहीं सब ने भोजन कर लिया....

पुष्कर

वहीं...हाथ और मुँह भी नहीं धोते थे...आचार और स्वभाव के तो ये अभी वन्य हैं। उनके शस्त्र उठवा कर शस्त्रागार में रखवा दिये गये। भोजन की सामग्री उन्हें रुचिकर लगी... आपस में हँसते हुए एक दूसरे को धक्के दे देकर खाते रहे। तीस सहस्र सैनिकों में सब को अलग-अलग पत्तल दिये गये थे किन्तु वे एक दूसरे के पत्तल से उठा कर खाते रहे।

विक्रममित्र

कहीं उपद्रव न करें...

पुष्कर

कुछ भी नहीं....उनकी थकान मिटाने के लिए जो भोजन के अन्त में मदिरा दी गई....ऐसे टूट पड़े जैसे गुड़ पर चींटे....उन्हें कुल तीन दिन कादम्बरी दे दी जाय, फिर तो मेरा विश्वास है

उनके लिए कारागार और पहरे की आवश्यकता न होगी...हाँ जब तक ये यहाँ रहेंगे इन्हें भोजन और मदिरा मिलती रहे।

विक्रममित्र

अवन्ती के नये भवन इनके श्रम पर बनेंगे।

पुष्कर

बहुत सुन्दर...

विक्रममित्र

कल से ही काम लगेगा। कुमार का अभिषेक हो रहा है। मैं मन्दिर के भीतर जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो। मन्त्री वासुदेव के साथ देवभूति उस यवन कन्या के साथ आयेगा....साकेत का वह यवन श्रेष्ठी भी होगा....सब को यहीं रोक लेना....कम से कम उन दोनों को और जब वहाँ मन्दिर के सामने अभिषेक के बाद कुमार गरुडध्वज फहराने लगें....तुम देवभूति और उस कन्या को ले आना [प्रस्थान]

(अमोघ के साथ वासुदेव का प्रवेश)

वासुदेव

(सब ओर देखकर) आचार्य कहाँ हैं....

पुष्कर

मन्दिर में कुमार विषमशील का अभिषेक हो रहा है।

(मन्दिर में शंखध्वनि होती है और ऊँचे स्वर में रुद्री के मन्त्र सुनाई पड़ते हैं)

वासुदेव

चलो श्रेष्ठी हम लोग भी दर्शन कर लें। आचार्य की तपस्या आज पूर्ण हुई। ब्राह्मण अब केवल शास्त्र साधना में रहेंगे। देश की रक्षा और शस्त्र साधना पूरे सौ वर्ष के बाद फिर क्षत्री का काम होगा।

(दोनों का प्रस्थान। पुष्कर मन्दिर की ओर मुँहकर दोनों हाथ जोड़कर खड़ा होता है। दो सैनिकों के पहरे में बन्दी देवभूति का प्रवेश। उसके दोनों हाथ रेशम की डोर से बँधे हैं। यवन कन्या कौमुदी उसके साथ चल रही है)

कौमुदी

(सैनिकों से) आप लोग थोड़ी देर उधर हट जायँ मैं कुमार से कुछ बातें कर लूँ....

सैनिक

कभी नहीं....आचार्य के सामने इन्हें उपस्थित कर हम लोग हटेंगे।

पुष्कर

आइये आप यहाँ (आगे बढ़कर अपनी कटि से लाल वस्त्र खोल कर चौतरे पर बिछाते हुए)....कुमार ? आप इस पर बैठिए और श्रेष्ठी कन्या आप कुमार से बातें करें (सैनिकों से) चलो तुम लोग यहाँ मेरे साथ... कुमार भाग जायँगे ? तुम लोगों को इतनी भी बुद्धि नहीं है कि कुमार आचार्य के पौत्र हैं। आचार्य के कठोर न्याय के कारण इन्हें पंद्रह दिनों से बन्दी रहना पड़ रहा है तो क्या हुआ ? कलंकी चन्द्र भी धूमकेतु से तो अधिक गौरव और महिमावान है (सैनिकों के साथ चौतरे पर दूर जाकर खड़ा होता है)

कौमुदी

तुम्हें जो दण्ड देंगे मैं भी वही स्वीकार करूँगी !

देवभूति

तुम स्त्री हो प्रिये ! प्राणदण्ड स्त्री को नहीं दिया जाता....

कौमुदी

किन्तु वह न्याय भी क्या होगा जिसमें एक अपराधी तो दण्ड

पाये और दूसरा नहीं। मैंने ही तो तुम्हें सूचित किया था। तुम मेरा अपहरण न भी करते तो मैं सरयू में डूब मरती। उस दिन उपवन विहार के समय तो केवल साहसिकों से डर कर वह भाग गया। तुम वहाँ न पहुँच जाते तब वे साहसिक मुझे ले गये होते....तब मेरे शरीर की क्या गति होती। तुमने उन पिशाचों को भगा कर मेरा उद्धार किया और मेरा पति बनता वह कायर जो मुझे दस्युओं पर छोड़कर, प्राण लेकर भागा था। (क्रोध में काँपने लगता है)

देवभूति

देखो क्या न्याय होता है। मेरे वंश में रघुवंश के महापुरुष रामचन्द्र का आदर्श चलता रहा है अपने दुर्भाग्य से मैं उस न्याय के घेरे में आ गया किन्तु मैं प्रसन्न हूँ और तुम भी प्रसन्न रहो। बस कुछ दिनों का तुम्हारा प्रेम मुझे अमर बना गया है.... मुझे अब किसी भी दण्ड की चिन्ता नहीं।

कौमुदी

पिताजी तुम्हारी मुक्ति की प्रार्थना करेंगे। सब कुछ जान जाने पर उनसे किसी अनीति की आशंका मुझे नहीं है। उस उपवन में मैं उन राक्षसों के भाग जाने पर भी थर-थर काँप रही थी। मैंने ही तो कहा था पकड़ लो नहीं तो गिर पड़ूँगी और जब तुमने मुझे सहारा दिया...तुम क्या करते मुझे फेंक देते? रक्षा करना भी अधर्म है? देखूँगी आज कैसे तुम्हें दण्ड....(रोने लगती है)

देवभूति

हाथ तो बाँधे हैं....आँख मूँद लो मैं अपने सिर से तुम्हारे आँसू पोंछ दूँ।

(कौमुदी आँख मूँद लेती है)। देवभूति अपना सिर उसकी

आँख पर घुमाता रहता है। मन्दिर में स्वस्ति वाचन के मन्त्र सुनाई पड़ते हैं। देवभूति अपना सिर हटाकर खड़ा होता है।

कौमुदी

(भय में...) क्या है?

देवभूति

अभिषेक समाप्त होगा। अब हम लोगों का न्याय होगा।

(मन्दिर के भीतर से सबके आगे कुमार विषमशील और कालिदास, मलयवती और वासन्ती के साथ निकलते हैं। विषमशील के हाथ में सोने का राजदण्ड है। कालिदास सोने के दण्ड में लपेटा हुआ गरुडध्वज लिये हैं। मलयवती और वासन्ती के हाथों में सोने के कलश हैं जिनके ऊपर फूलों के गुच्छे हैं। आचार्य विक्रममित्र, महादेवी, सौम्यदर्शना और काशिराज प्रधान पुजारी के साथ बाहर निकलते हैं और उन लोगों के पीछे भीमराज, शातकर्णि कार्तिकेश्वर और चक्रपाणि हैं मान्धाता और भी कई जन हैं।

पुरोहित

आचार्य!

विक्रममित्र

(आनन्द से गद्‌गद् स्वर में) पुरोहित की आज्ञा से कुमार अब अखिल-लोक-गौरव, शास्त्र और शस्त्र के रक्षक गरुडध्वज को फहरा दें। उपस्थित मण्डली हाथ जोड़ कर उस विभूति को प्रणाम करे।

(कुमार विषमशील कालिदास के हाथ से लेकर गरुडध्वज फहराते हैं।

गरुडध्वज की जय....महाकाल भगवान शङ्कर की जय... आचार्य विक्रममित्र और माता सौम्यदर्शना की जय....कुमार विषमशील की जय....की ध्वनि वायु मण्डल में गूँज उठती है।

(देवभूति और कौमुदी के साथ पुष्कर का प्रवेश)

पुष्कर

जय हो देव ! अपराधी उपस्थित हैं।

कु० विषमशील

देवभूति और कौमुदी को एकटक देखते हुए) क्या.....

विक्रममित्र

कुमार ! अभिषेक के पश्चात् यह तुम्हारा पहला न्याय होगा। शक्ति-पुञ्ज इस गरुडध्वज की छाया में...महाकाल शङ्कर के सामने तुम यह पहला न्याय करदो....बस इस न्याय को देखकर काशिराज और महादेवी के साथ मैं तीर्थ यात्रा को चल पड़ूँ ...

कु० विषमशील

आचार्य ! आप लोग मुझे पर्वत के शिखर से गिरा रहे हैं.... आप लोग मुझे छोड़कर चले जायँगे।

सौम्यदर्शना

हाँ वत्स ! हम लोग अब कुछ उस लोक की भी चिन्ता करेंगे। बस तुम्हारा यह न्याय देखकर हम लोगों को विश्वास हो जायेगा कि तुम प्रजा-रञ्जन कर सकोगे। न्याय तुम्हारा धर्मराज की भाँति होना चाहिए।

कु० विषमशील

किन्तु यह अपराधी...इतना तेज....कदाचित कोई शाप-ग्रस्त ऋषि...इनका कुल, शील और अपराध...

विक्रममित्र

कुमार ! जन्म तो इसने लिया स्वर्गीय सेनापति पुष्यमित्र के वंश में किन्तु कर्म इसके चाण्डाल के हैं।

कु॰ विषमशील

अरे! तो कुमार देवभूति यही हैं (विस्मय से देखने लगते हैं)

विक्रममित्र

हाँ....किन्तु तुम किसी के कुल और मर्यादा के विचार से न्याय में न डिगोगे। मेरे वंश के कीर्ति सरोवर से तुम्हें इस ग्राह को निकाल फेंकना होगा।

कु॰ विषमशील

किन्तु आचार्य! यह न्याय आपने ही क्यों नहीं किया? परीक्षा की यह इतनी कड़ी आँच में नहीं सह सकूँगा। अपराधी देवभूति भी मेरे लिए सदैव पूज्य हैं। उनकी आँखों में, उनकी ललाट की आभा में उनकी एक एक मुद्रा में मुझे तो अक्षय पुण्य स्वर्गीय आचार्य, पुष्यमित्र, अग्निमित्र, वसुमित्र और विक्रम मित्र दिखाई पड़ते हैं। यह मुझसे नहीं हो सकेगा कभी नहीं.... आपके ही पुण्य और प्रताप से यह राजदण्ड मेरे हाथ में आ सका मैं इसे अभी छोड़ रहा हूँ...कौन ले रहा है इसे आप लेंगे या महाकाल के मन्दिर में रख दूँ....

विक्रममित्र

अपना रक्त मनुष्य से अन्याय कराता है। इस दुर्बुद्धि को मैं कठिन से कठिन दण्ड तो देना चाहता था किन्तु शंका होती थी, इसके मुख की ओर देख कर कहीं मेरा हृदय निर्बल न हो जाय और लोक में मुझे पक्षपात का दोष लगे। बस इसी अधीरता में मैं कुछ न कर सका। तुम जानते हो अपने वंश के गौरव के लिए मैंने अपने ही लिए क्या दण्ड निर्धारित किया....

काशिराज

आजन्म ब्रह्मचारी...आचार्य केवल वंशज के गौरव के लिए....इच्छामृत्यु भीष्म और सेनापति विक्रममित्र.... मनुष्य तो दो ही हुए जो अपने इस तप में शंकर से भी आगे निकल गये।

(विक्रममित्र दोनों हाथों में सिर पकड़ कर वहीं धरती पर बैठ जाते हैं।)

काशिराज

कुमार ! क्या देख रहे हो...तुम्हें न्याय करना है....

विक्रममित्र

जिसमें विवाह मण्डप से कन्या अपहरण का साहस इस देश में फिर किसी को न हो !

कौमुदी

असत्य है...इन्होंने मेरा अपहरण नहीं किया। स्वेच्छा से इनके साथ गई थी...पति की कामना मेरी ही नहीं....किसी भी षोडशी के लिए स्वाभाविक है। किन्तु कायर पति की कामना कोई भी कुमारी नहीं करेगी....मेरा जिस यवन से विवाह हो रहा था वह कायर था।

कु० विषमशील

कवि क्या कह रही है यह कन्या...

कालिदास

श्रेष्ठी कन्या सत्य कह रही है...और इसके पिता यवन श्रेष्ठी भी यहीं हैं....

अमोघ

अपराध मेरा है। मेरी कन्या ने उस विवाह का विरोध किया था....

कु० विषमशील

तो वह कायर था यह तुम कैसे कहती हो श्रेष्ठी कन्या....

कौमुदी

यहाँ इतने लोगों के बीच में सब कुछ कह देना तो सम्भव नहीं....किन्तु जहाँ जीवन संकट में है.. मुझे लज्जा छोड़नी ही होगी। विवाह के दिन से कुल नौ दिन पहले की बात है मैं उद्यान विहार के लिए उस यवन कुमार के साथ गई साकेत के पश्चिम उसके साथ मैं उद्यान में घूम रही थी....संध्या हो गई....आँखों के सामने लता, वृक्ष धूमिल लगने लगे...फूलों का रंग मिटने लगा...अकस्मात पीछे की ओर से दो साहसिक निकल आये...इधर मुझे एक ही साथ दोनों ने पकड़ लिया और उधर वह यवन सिर पर पैर रखकर भाग निकला...

कु० विषमशील

तब...तुम्हारी रक्षा जो...

कौमुदी

मैं चिल्लाने लगी.....तब तक एक दस्यु ने मेरा मुँह हाथ से दबा दिया किन्तु तुरत ही....

देवभूति

चुप रहो...कलंक का परिहार नहीं....उसके लिए प्रयत्न भी मूर्खता है। मैं अपराधी हूँ कुमार! मुझे दण्ड दीजिए। ऐसा दंड जिससे मेरे पूर्व पुरुषों का गौरव बचा रहे।

काशिराज

श्रेष्ठी कन्या की सभी बातें सुन ली जायँ...

(एक ही साथ कई स्वर) हाँ....अवश्य....अवश्य

कु० विषमशील

कहो अब श्रेष्ठी कन्या तुम और (गरुडध्वज हिलाते हुए) और इस गरुडध्वज की मर्यादा में द्विज श्रेष्ठ देवभूति अब न रोकें...

(कौमुदी देवभूति की ओर देखती रहती है ।)

देवभूति

(कालिदास से) कवि ! इसे संकोच हो रहा है। कुमार आदेश दें तो शेष मैं कह दूँ....

कु० विषमशील

कोई बात नहीं...किन्तु कौमुदी को आपकी बातों की सत्यता का...

देवभूति

देखिये ! सब कुछ सब कहीं तो कहा नहीं जा सकता, किन्तु मैं अधिक अंश कह दूँगा। स्त्री कण्ठ की करुण पुकार पर ही मैं उस उद्यान में गया...साहसिकों ने पहले तो मेरा सामना किया, किन्तु जब मैंने अपने नाम और पद का परिचय देकर उन्हें ललकारा वे भाग गये।

विक्रममित्र

तब...यह अपवाद क्यों...

देवभूति

यह कुमारी भय से काँप रही थी। मुझे इसे पकड़ कर बैठ जाना पड़ा...यह रोती ही रही और अन्त में इसने यह भी कह दिया कि यदि मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा तो यह सरयू में डूब मरेगी किन्तु उस कायर की पत्नी न होगी। उन्हीं, वृक्षों, लताओं और आकाश के नक्षत्रों के सामने इसके आग्रह पर मैंने इसे

पत्नीरूप में स्वीकार कर लिया। उसी दिन यह भी निश्चित हो गया कि विवाह मण्डप से ही यदि श्रेष्ठी ने इसकी इच्छा के विरुद्ध इसे उस भगोड़े को देना चाहा तो यह मेरे साथ चली जायेगी। मैं इसके मोह में पड़ गया...इसकी अधीरता और कातरता में मेरा विवेक मन्द पड़ गया...मैं अपना मन वश में न रख सका और मैं अब अपराधी हूँ...

कु० विषमशील

क्यों श्रेष्ठी कन्या...यह सब सच है ?

कौमुदी

(कष्ट के स्वर में) सच है...सच...एक एक अक्षर...उनके साथ ही मुझे भी दण्ड मिलना चाहिए और वही दण्ड जो उन्हें मिले।

अमोघ

(हाथ जोड़ कर) इस सारे काण्ड का दोष तो मेरा है। कौमुदी ने कह दिया था वह उसके साथ न रहेगी...क्षमा....क्षमा कर दीजिये कुमार...

देवभूति

(कड़े शब्दों में) किस लिए जी किस लिए....मेरे लिए क्षमा माँग रहे हो तुम...मैं प्राण रहते कभी क्षमा माँगूँगा ? तब...तब तो मेरे पुरखे...

सौम्यदर्शना

आचार्य ! कुमार देवभूति को दण्ड नहीं होना चाहिए। ईश्वर की यही इच्छा थी।

मलयवती

नहीं कभी नहीं...रक्षा भी अपराध है ?

काशिराज

बड़ी विकट समस्या है...

कुमार विषमशील

यवन श्रेष्ठी अपनी भूल स्वीकार कर रहे हैं...अपहरण तो यहाँ कहा नहीं जा सकता।

विक्रममित्र

मुझसे तो इन श्रेष्ठी ने यही कहा था...मैं तो अब तक इसे अपहरण....

देवभूति

कुमार आपको न्याय का अधिकार है....मेरे कारण पूज्य-पाद पितामह की मर्यादा नष्ट हुई।

कालिदास

यदि आप आंशिक अपराध भी मानते हों....आपके भीतर उसके कारण आत्म ग्लानि हो""तब अपने दण्ड का निर्णय आप स्वयं क्यों नहीं कर लेते...ब्राह्मण आचरण के अनुकूल तो यही होगा।

वासन्ती

अब यह कवि की सूझ है.....

देवभूति

ठीक है कवि! चक्रवर्ती विषमशील के न्याय में अपराधी अपने दण्ड का निर्णय स्वयं करे। इनके निकट आ जाने पर वह अपने पाप के लिए मिथ्या और वञ्चना से काम न लेकर सत्य और स्वाभिमान से काम ले। मैं स्वेच्छा से निष्कासन स्वीकार करता हूँ। जिस पुण्यभूमि में मेरे यशस्वी पूर्वज रहे उसे मैं अपने निवास से कलंकित न करूँगा।

कु० विषमशील

(आगे बढ़कर देवभूति का बन्धन खोलते हुए) बस इ‌‌… अधिक दण्ड तो कोई भी क्रूर क्या देता ? और यह यवन कन्या....

कौमुदी

मैंने तो कह दिया जो उनका दण्ड होगा वही मेरा भी...

अमोघ

तो तुम भी चली जाओगी ।.....

कौमुदी

साकेत और मगध के शासक मेरे ही लिए देश छोड़ रहे हैं और मैं क्या इतनी अकृतज्ञ हूँ...(देवभूति के निकट जाकर उनकी बाँह पकड़ लेती है)

विक्रममित्र

अब मैं निश्चिन्त हुआ...साकेत और पाटलीपुत्र भी अवन्ती के अधिकार में रहे...

कु० विषमशील

आचार्य ! अभी कुछ दिन आप महात्मा काशिराज के साथ उधर की व्यवस्था करें । मैं चाहता हूँ...मेरे सिर पर किसी मनस्वी ब्राह्मण की छाया रहे और फिर मैं यह देख भी नहीं सकता कि जिस क्षेत्र में प्रायः डेढ़ सौ वर्षों से आपके पूर्व पुरुषों का अनुशासन रहा वह अकस्मात् इस प्रकार मिट जाय ।

विक्रममित्र

हमारे पूर्वज केवल सेनापति० रहे...कितने दिनों तक यह व्यवस्था चलती, राज दण्ड सदैव क्षत्रिय के हाथ में रहना चाहिए और अब तुम रघु की भाँति प्रजा रञ्जन करो । हमारा काम समाप्त है ।

कु० विषमशील

बड़ी ! आप किसी को अपना अधिकार दे दीजिये। किसी भी ब्राह्मण को...मुझे सन्तोष होगा ?

विक्रममित्र

तो ठीक है...तुम्हारे अनुशासन में हमारे मन्त्री वासुदेव उधर के रक्षक रहें।

वासुदेव

आर्य...सेवक रहा हूँ मैं अब तक...और यह मेरे भविष्य का कलंक रहेगा कि स्वामी को हटा कर मैं शासक बन गया।

विक्रममित्र

देवभूति ! वासुदेव क्या कह रहे हैं...

देवभूति

मेरे निर्णय में अब कोई परिवर्तन नहीं है आर्य...आप मुझे क्षमा करें...

विक्रममित्र

यही तुम्हारा गौरव होगा। निर्णय से डिग जाना तो मनुष्य की सब से बड़ी पराजय है।

(शीलभद्र का प्रवेश)

शीलभद्र

यह अवन्ती के निर्माण का मानचित्र है। पूरे नगर को नौ मण्डलों में बाँट कर, राजपथ, उद्यान आदि के स्थान दे दिये गये हैं।

कु० विषमशील

(मानचित्र खोलकर) यह तो...इतने उद्यान...वृक्षों के नीचे सभी भवन छिप जायेंगे...अवन्ती अरण्य सी लगेगी।